चैत्र २०१८ —— वर्ष १ - अङ्क ६ —— अप्रैल १९६१

परमानन्द संदेश

सचित्र आध्यात्मिक, धार्मिक मासिक

वर्ष १ अङ्क ६
चैत्र २०१८
अप्रैल १९६१

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा
ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं
शरवत्तन्मयो भवेत॥

ॐकार धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है। सावधान होकर लक्ष्य का ऐसा वेधन करना चाहिये कि बाण के समान ही यह आत्मा ब्रह्म में समा जाय।

कार्यालय
शारदा प्रतिष्ठान
सी० के० १५।५१ सुड़िया, बुलानाला
वाराणसी—१

मूल्य—
एक प्रतिका ४२ नये पैसे
वार्षिक पाँच रुपये
विदेशमें सात रुपये पचास नये पैसे

सुमति दे हम सबको भगवान

सुमति दे हम सबको भगवान, करें सबका स्वागत सम्मान ।।

सबको प्रेम सहित अपनायें, जीवमात्र को सुख पहुँचायें
करें नहीं अपमान ।। सुमति०

सीखें सबकी सेवा करना, सीखें दुखियोंके दुःख हरना
हो न कभी अभिमान ।। सुमति०

अपना सा दुःख सबका जानैं, अन्तरात्मा को पहिचानैं ।
रहे सदा यह ध्यान ।। सुमति०

कभी न कष्टों से घबड़ायें, अरु अधीर को धीर बँधायें ।
हों गम्भीर महान ।। सुमति०

विद्या, विनय विवेक बढ़ावें, काम क्रोध मद लोभ हटावें ।
पालें वेद विधान ।। सुमति०

अनिल अनल जल व्योम मही में, त्रिजग देव नर असुर सभी में
करैं तेरी पहचान ।। सुमति०

सब मिल ध्यान धरें हम तेरा, उठे अविद्या का अब डेरा ।
बढ़े ज्ञान-विज्ञान ।। सुमति०

प्रभु हर नर-नारी के अन्दर, जगे ज्ञान की ज्योति निरंतर ।
नासै तम अज्ञान ।। सुमति०

वेदों का उद्देश्य यही है, सद्गुरु का सन्देश यही है ।
हो सबका कल्यान ।। सुमति०

अन्तिम यही विनय है मेरी, रहे दास पर कृपा घनेरी ।
'हंस' आपनो जान ।। सुमति०

रचयिता—श्री १०८ स्वामी हंस जी महाराज
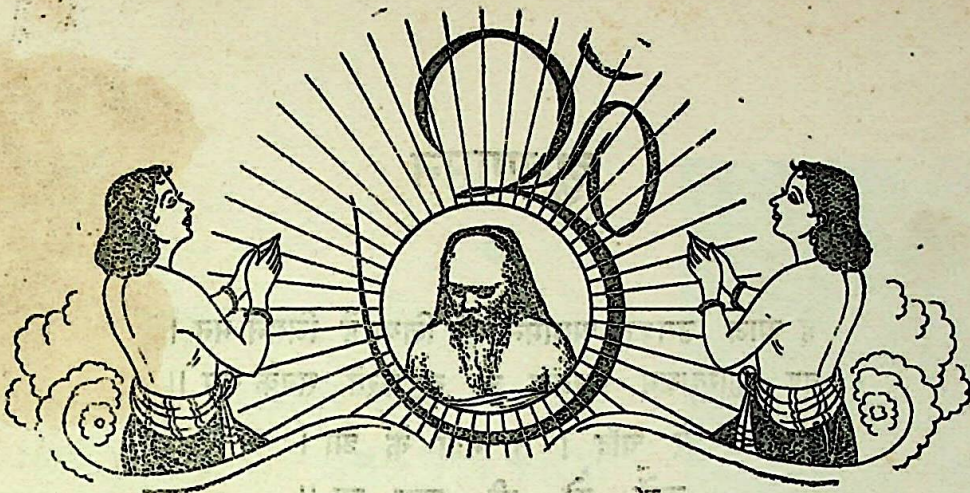
जयजय सद्गुरु शारदाराम

परमानन्द संदेश

दुख खण्डन परमानन्द मण्डन, है इस पत्र का भाव ।
पढ़े सुनै अमली बने, सो लख पावे प्रभाव ॥

वर्ष १ अङ्क ६ | वाराणसी चैत्र संवत् २०१८ शक १८८३ | मूल्य–४२ नये पैसे वार्षिक–५) रुपये

सत्-चित-आनन्द नारायण कहियो

श्री विष्णु जी का विश्व व्यवहारा ।
पाँच तत्व पचीस बनावै, चेतन सही अधारा ॥
एक को एक सता देत है, ऐसो बना आप कर अचारा ॥
पवन पानी जीवन सुखताई, सूरज चन्द्र प्रकाश संचारा ॥
औषधि अन्न जीव-जीवन-कारण, धरती पर खेलत खेलवारा ॥
"शारदाराम' अज्ञान में दुनियाँ, ना समुझै विष्णु विस्तारा ॥

—बाबा शारदाराम कृत भागवतकिरणसे उधृत

शुभागमन

है आज उसका आगमन, हर लिया है जिसने मन ।
वह शारदाराम पारब्रह्म, जो दूर करते सबके गम ।।

ऐ चाँद ! तू नहा के आ ।
तारों को भी साथ ला ।।
चाँदनी को दे फैला, समा बना बहार का ।
है आज उसका आगमन, हर लिया है जिसने मन ।।

ऐ अबर ! तू झुक के आ ।
ऐ पवन ! तू रुक के आ ।।
धीरे धीरे कर असर, सारे जहाँ को हो खबर ।
है आज उसका आगमन, हर लिया है जिसने मन ।।

ए गुलो ! तुम खिलखिलाओ ।
कलियो री घूँघट उठाओ ।।
बुलबुलो तुम चहचहाओ, कोकिले कोई गीत गावो ।
है आज उसका आगमन, हर लिया है जिसने मन ।।

विभूति तेरी शान है ।
माना कि तू महान है ।।
जिसने है दी महानता, उसको जहाँ है जानता ।
है आज उसका आगमन, हर लिया है जिसने मन ।।

जो ॐ है करतार है ।
खिजाँ में भी बहार है ।।
द्रौपदी की लाज है, जहाँ पे जिसका राज है ।
है आज उसका आगमन, हर लिया है जिसने मन ।।
वह शारदाराम पारब्रह्म, जो दूर करते सबके गम ।।

रचयिता—सरदार गुरुचरन सिंह, अहमदाबाद

सन्त प्रवचन

सद्गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन मुनिके अमृत तुल्य उपदेश
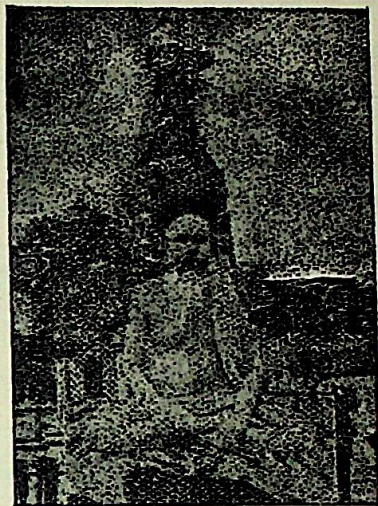
"आप सब लोग ॐ नाम की ध्वनि लगाते हैं, अतः आज आपको ॐ कार की महिमा का वर्णन सुनायेंगे। ॐ की शक्ति का वर्णन सुनायेंगे, ॐ का महात्म्य सुनावेंगे। ॐ की महिमा हर ग्रंथ में वर्णित है। गुरु नानक जी कहते हैं— ।। एक ॐ कार ब्रह्मनाम ।। अर्थात् उस कर्ता-अकर्ता ज्योति स्वरूप परब्रह्म का नाम है ॐ। इस ॐ के अन्दर ही सारे विश्व की रचना हुई है। इस विश्व में जितने भी विचार, विवेक, विकार, शक्ति, शुभ, अशुभ आदि कर्म हैं सब ॐ से उत्पन्न हुए हैं। भगवान् कहते हैं कि एक अक्षर जो ॐ का है वही ब्रह्म का स्वरूप है। ॐ को जपने वाले, उसके रहस्य को समझने वाले, ॐ का जपकर उसी में मिल जाते हैं। गुरु नानकजी जब पंडितजी के पास पढ़ने गए, तब पांडेजी से कहने लगे—

ॐ नमः अक्षर करो विचार।
ॐ नमः अक्षर त्रिभुवन सार।

भागवत किरण में भी वर्णन आया है—

सुमिरन कर मन ॐ प्रभु नामा।
जाके सुमिरन भव दुख नासत,
अचल मिलत ॐ धामा।
अक्षर प्रणव ब्रह्म कहावै,
सो आत्म निज रामा।
भरमत फिरत विषय सुखमाते,
ॐ भजन बिन कहाँ बिसरामा।
अटल, अविनाशी ध्रुवपद चाहत,
ॐ ॐ रट यह कामा।
शारदाराम सब सुख सागर,
पाया अचल ॐ ज्ञाना।

उपरोक्त शब्दावली में मन को समझाते हैं कि हे मन तू उस ॐ का जो ज्योति स्वरूप का सर्वश्रेष्ठ नाम है, सुमिरन कर। संसार में जो भी कुछ कार्य किया जाता है, वह किसी कारण के लिए ही किया जाता है। उसी प्रकार ॐ नाम का जपकर और इस भवसागर से पार हो जा।

ॐ नाम कहाँ जपा जा सकता है ? सन्तों के पास जाकर। तुलसीदास जी कहते हैं—

एक घड़ी आधा घड़ी, आधा में पुनि आध।
'तुलसी' संगत साधु की, हरे कोटि अपराध॥

सन्तों के संग में बैठकर ॐ का जप, ॐ स्वरूप ब्रह्म का ध्यान किया जाए, कथा, ज्ञानचर्चा की जाए तो शीघ्र ही मुक्त हुआ जा सकता है, क्योंकि सत्संग में बैठकर नाम जपने से अभिमान नहीं होगा, अज्ञान नहीं होगा, अविचार नहीं होगा। सन्तों के उपदेश मनके विकार दूर करते हैं। मन को निर्मल, शुद्ध और स्थिर कर देते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हमारा अचल जो धाम है, वह निराकार ब्रह्म है और ॐ ब्रह्म का स्वरूप है। सूर्य चन्द्रमा जिस प्रकार प्रकाश देते हैं उसी प्रकार बुद्धि में भी प्रकाश है। मलीन बुद्धि में प्रकाश कम होता है और निर्मल बुद्धि में अधिक प्रकाश होता है। विशेष प्रकाश की बुद्धि वाले दूसरों का उपकार करते हैं। लोग उनका यश गाते हैं। बुद्धि के प्रकाश को ही आजकल विज्ञान कहते हैं साईन्स कहते हैं। जिसकी बुद्धि में प्रकाश नहीं, जिसकी बुद्धि मलीन हो गई है, वह सुख नहीं भोग सकता। अगर कोई एक राजा है, उसके पास अपार धन है, अनेक हाथी, घोड़े हैं, जनता उसका यश गाती है। लेकिन जब उसकी बुद्धि मलीन हो गई तथा पागल हो गया तो उससे सुख सब दूर हो जाते हैं, वह अपनी धन राशि का उचित उपयोग नहीं करता, जनता उसे बुरा-भला कहती है। उसे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवद् गीता दूसरे अध्याय में कहा गया है—

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

जिसकी बुद्धि कुशल नहीं, वह सुख नहीं भोग सकता, जिसमें श्रद्धा नहीं है वह सुख नहीं भोग सकता, जिसमें शान्ति नहीं, उसे सुख नहीं मिल सकता। अशांति अग्नि है, तृष्णा है वह हमेशा चित्त को जलाती रहती है। शान्ति आ जाने से सुख आपही आ जाता है। अगर किसी के सामने भोजन की थाली पड़ी है, वह कहे कि बहुत अच्छा भोजन है तो उसे भोजन खानेमें बड़ा आनंद आयेगा लेकिन अगर वह कहे कि भोजन कम है, अच्छा नहीं है तो उसका भोजन करनेका दिल नहीं करेगा, चित्तमें अशांति बनी रहेगी और वह भूखा ही रह जायेगा। सुदामाने भगवान्‌को सूखे चावल खिलाए हैं, सिवरीने भगवान्‌को जूठे बेर खिलाये हैं। श्रीकृष्ण भगवान सुदामाजीके चावल खाते हुए अपनी रानियोंसे कहते हैं कि मैंने आजतक ऐसा भोजन नहीं खाया है जैसा कि ये सुदामा जीके चावल हैं। यह सुनकर रानियों को इस बातका अचरज लगा कि सुदामाके चावलोंमें ऐसा क्या भरा है ? तो उसमें सुदामाका प्रेम भरा है। यहाँ पर भगवान लोकाचार बनाए हैं कि प्राणिमात्र को शांतिकी बहुत जरूरत है। एक दृष्टांत है कि अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान से कहते हैं कि आप तो पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, परब्रह्मस्वरूप है आपको तो देनेके लिए एक महान भेंट देनी होगी। तब श्रीकृष्ण कहते

हैं कि हे अर्जुन कोई भी अगर हमको दो फूल, या अल्प भेंट भी श्रद्धासे अर्पण करता है तो हम उसे बड़े प्रेमसे ग्रहण करते हैं। तीसरा दृष्टांत है कि एक बार अकबर बादशाहने बीरबलसे पूछा कि बताओ अन्नोंमें कौन-सा अन्न सबसे मीठा है ? तब बीरबलने उत्तर दिया—'महाराज ! अन्न नहीं मीठा होता, मीठी भूख होती है ! अकबर ने फिर पूछा–'कैसे ?' तब बीरबलने कहा—'किसी दूसरे दिन बतावेंगे।' एक दिन बादशाह और बीरबल शिकार खेलने जंगलमें गए। जल्दी में भोजन साथ नहीं ले गए। बीरबलने थोड़ा छिपाकर ले लिया था। जंगलमें शिकार खेलते-खेलते बहुत देर हो गई। बादशाह को बहुत भूख लगी। बीरबलसे बोले—'बीरबल, कहींसे भी अगर कोई रूखा-सूखा रोटीका टुकड़ा मिल जाए तो अच्छा होता भूख बहुत तेज लगी है। कहीं देखो तो सही।'

तब बीरबलने अपने थैलेसे आधी रोटी और पानी निकाल कर बादशाह को दिया। बादशाहने बड़े प्रेमसे खाया और प्रसन्न मनसे कहा—'बीरबल बड़ा आनंद आया है। किस अन्नकी रोटी है। इसमें तो अमृत जैसा स्वाद है।' तब बीरबलने कहा—'मैंने तो कहा था कि अन्न मीठा नहीं होता, भूख मीठी होती है।' बादशाह बोले—'कैसे ?' तब बीरबलने कहा—'आप को जो रोटी दी है, वह चनेकी थी जो घोड़ों को दी जाती है। यह चनेकी रोटी, आदमियों के लिए नहीं थी, फिर भी आप कहते हैं अमृत सा स्वाद आया है इससे पता चलता है कि भूख मीठी है, क्योंकि भूखसे अन्नके लिए प्रेम उत्पन्न हुआ और अन्न मीठा लगा।'

सारांश यह कि अकबर बादशाहने इस समय उस रोटीके टुकड़ेसे ही अपनी क्षुधा मिटायी। यदि वह उस रोटी को न खाता तो उसके लिए अशांति बनी ही रहती और वह भूखा-प्यासा ही रहता। मतलब यह कि शांति परमसुखदायी है। भव नाम है—चौरासी का। उससे निवृत्ति पानेका सुगम उपाय ॐ नामका जाप है। जो प्राणी ॐ नामका जाप करेगा वह अविनाशी, अचल, महान, परमानंद ब्रह्मके धाम को प्राप्त करेगा। इसलिए हमेशा ॐ नामका जाप करते रहना चाहिए। जैसे विष्णुके उपासक विष्णु का ध्यान करते हैं जिनकी चार भुजाएँ हैं एक हाथमें चक्र है, दूसरे हाथमें गदा, तीसरे हाथमें कमल पुष्प है, चौथे हाथमें शंख है, सिर पर मुकुट है, गलेमें हार है, हाथमें कंगन है और बाएँ अंगमें लक्ष्मी विराजमान हैं। शिवजीके उपासक वर्णन करते हैं कि उनके सिर पर जटाएँ हैं, नागके आभूषण हैं, अंग पर विभूति है, पार्वती माता बाईं ओर शोभित हैं। उसी प्रकार ॐ का स्वरूप परब्रह्म है। ॐ के दो लक्ष्य हैं जैसे हम कहते हैं कि ये चावल हैं। चावल कहनेसे एक तो चावलका शब्द है दूसरा शब्दका अर्थ है चावल। ॐ जो है सो वाचक शब्द है और ॐ का अर्थ है ब्रह्म। लोहा अग्निमें डालने से वह भी अग्निका ही स्वरूप हो जाता है। ॐ जपने वाले भी ॐ स्वरूप हो जाते हैं। ॐ सर्वव्यापक है; आकाश, पातालमें हर स्थानमें ॐ ही है। जो इस विश्वमें चेतन शक्ति है

वह भी ॐ ब्रह्म है। जो भी अवतार हुए हैं, वे सब ॐ के ही स्वरूप हैं। हमारी जीवात्मा भी ॐ का ही स्वरूप हैं; लेकिन हम दोनोंके बीच अज्ञानता का पर्दा होनेसे हम अपने आप को जीव समझते हैं, अपने आप को ॐ से भिन्न समझते हैं। अज्ञान रूपी पर्दा हट जानेसे ब्रह्म (ॐ) और हममें कुछ भेद नहीं रह जाएगा यह ध्यान रखना चाहिए कि शेरका बच्चा शेर ही होगा। उसी प्रकार भगवानका सिद्धांत है कि जितने जीव हैं सब हमारे अंश हैं, हमारे ही स्वरूपसे उत्पन्न हुए हैं। लेकिन जिवात्मा अज्ञानके कारण भ्रममें पड़ा रहता है। मृग-तृष्णाके समान सुखों को ढूँढ़ता है परन्तु सुख की प्राप्ति नहीं होती। वह विषय भोगोंमें सुख देखता है, लेकिन वह सिर्फ रस्सीमें सर्प होनेके भ्रमके समान ही है। वह केवल उसकी भावना है। सुखस्वरूप आत्मा को बाहरकी वस्तु भी सुखस्वरूप प्रतीत होती है। हे जीवों! भगवद् ध्यानके विना सुख किसीमें भी नहीं है।'

सब प्राणी सुख चाहते हैं। अपने सुखों को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। कभी भी माया की तृष्णा का अन्त नहीं होता, वह बढ़ती ही जाती है। माया की तृष्णा खतम करने के लिए क्या करना चाहिए? ऐ जीव। यदि तुम परम सुख चाहते हो तो ॐ नाम का जप करो, ॐ का रट लगाओ, ॐ नाम का अभ्यास करो संसार के सब सुखों का सागर सिर्फ ॐ है। परलोक सुख, आध्यात्मिक सुख सभी ॐ ब्रह्म है, जिसके हृदय में ॐ पर निश्चय हो गया, जिसने ॐ नाम को प्राप्त कर लिया, वह ब्रह्म में समा जाता है। ब्रह्म और उसमें कोई भेद नहीं रह जाता। जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं होता। आकाश हर स्थान पर है, खाली घरमें भी है, और हमारे शरीरके अन्दर भी आकाश है। अगर किसी भवनका निर्माण करना हो तो पहले थोड़ी-सी जमीन नीचे की ओर खोदकर वहाँ आकाश को प्रगट किया जाता है और फिर नींव रखी जाती है। उसी प्रकार ब्रह्म स्वरूप ॐ हर स्थान पर विद्यमान है। ब्रह्म अचल है, क्रिया रहित है। सूर्य उदय होने पर सब कार्य होने लगते हैं, परन्तु सूर्य सतह देते हुए अलग है। क्रिया रहित है। बाकी सबमें कोई न कोई क्रिया करते ही रहते हैं। यह जो क्रिया होती है वह स्वभाविक क्रिया है। सूर्य रूपी ब्रह्म प्राणिमात्र को सतह देते हुए क्रिया करता रहता है। यह स्वभाविक क्रिया बदल नहीं सकती। भारत स्वतंत्र हो गया है, लेकिन लोगोंका स्वभाव नहीं बदला। चमारों का स्वभाव है, चमड़े का कार्य करना। उन्होंने अपने स्वभाव का त्याग नहीं किया। स्वभाव सिर्फ एकही तरीकेसे बदला जा सकता है और वह है 'सत्संग'। सत्संगके प्रभावसे स्वभाव को बदला जा सकता है। सत्संगके प्रभावसे ही सदन कसाई का स्वभाव बदल गया था। वह हमेशा सत्संग किया करता था, संतोंके उपदेश पर चलता था। जो सत्संग करेगा, सन्तोंके उपदेश पर चलेगा, ॐ का नाम जपेगा, वह हमेशा प्रकृतिके स्वभाव में ही चलेगा।

इस विश्वकी रचना जड़ और चेतन दो प्रकारोंसे हुई है। इन दोनों प्रकारोंमें स्वयं ब्रह्म

जीवो ब्रह्मैव नापरः

श्री वेदान्ती जी

जीव परिच्छिन्न, नाना तथा विकारी है परन्तु ब्रह्म व्यापक एक एवं निर्विकार है फिर जीवका ब्रह्मसे अभेद किस प्रकार है ? यह प्रश्न उठता है।

जैसे कोयलोंमें प्रकट विशेष अग्नि सामान्य अग्नि स्वरूप ही है, भिन्न नहीं, उसी प्रकार अविद्या व अन्तःकरणोंमें प्रकट विशेष चेतन जीवका वास्तविक स्वरूप सामान्य चेतन ब्रह्म ही है भिन्न नहीं; क्योंकि जैसे सामान्य अग्नि ही कोयलोंमें प्रकट होकर अग्नि कहलाती है उसी प्रकार सामान्य चेतन ब्रह्म ही अविद्या और अन्तःकरणों में प्रकट होकर जीव कहलाता है, जैसा कि श्रुति भगवती भी कहती है "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" पंचदशीकार भी कहते हैं:—

परमात्माद्वयानन्दः पूर्णः पूर्वं स्वमायया।
स्वयमेव जगद्भूत्वा प्राविशज्जीवरूपतः॥

जैसे सामान्य अग्नि सर्वत्र है और विशेष अग्नि कहीं-कहीं होने से परिच्छिन्न है तथा कोयलों के अनेक होने से नाना जैसी प्रतीत होती है, उसी प्रकार सामान्य चेतन ब्रह्म व्यापक और एक है, परन्तु उपाधियाँ अनेक होने से विशेष चेतन (जीव) नाना और परिच्छिन्न प्रतीत होते हैं। जैसे अग्नि से तपे हुए लोहपिंड के विकार व्याप्त अग्नि में प्रतीत होते हैं अथवा जैसे जल का हिलना और चलना प्रतिबिम्बित चन्द्रमें प्रतीत होता है अथवा जैसे रेलके दौड़नेसे निकटके वृक्ष भागते हुए प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार शरीर प्राण मन व इन्द्रियों के गुण-दोष विशेष चेतन जीवमें भ्रममात्रसे प्रतीत होतें हैं।

जैसे लट्टुओंमें अनेकता तथा उनकी शक्तियों में विषमता है, बिजली में नहीं, उसी प्रकार अन्तःकरणों में अनेकता

समाया हुआ है। इसलिए हमेशा उसी ब्रह्मका ध्यान करना चाहिए, हमेशा सत्संग करना चाहिए, सन्तोंके उपदेश पर चलना चाहिए. हमेशा ब्रह्मका ध्यान करना चाहिये। सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि ब्रह्म हर स्थान पर समाया हुआ है। किसी बर्तनमें घी भरा हुआ है उसमें से सारा घी निकाल लेने पर भी उस बर्तनमें थोड़ा बहुत घी की सुगन्ध रह जाती है उसी प्रकार प्राणिमात्रके सूक्ष्म शरीरमें भी थोड़ा बहुत नाम का अंक रहता है। प्राणीको चाहिये कि उस नामको बढ़ावें प्रभुका ध्यान करें और ब्रह्ममें लीन हो जाँय।

संग्रहकर्ता—सरदार शाह सजुले

विषमता तथा परिच्छिन्नता है, चेतन में नहीं। जैसे दस पावरके लट्टूमें कम प्रकाश तथा हजार पावरके लट्टूमें अधिक प्रकाश प्रकट होता है उसी प्रकार एक मायासें प्रतिविम्बित चेतन सर्वज्ञ और एक, तथा नाना अन्तःकरणों-में प्रतिविम्बित चेतन अल्पज्ञ और नाना प्रतीत होते हैं। परन्तु जैसे शान्त निर्मल जलपूर्ण तालावमें प्रतिविम्बित सूर्यका वास्तविक स्वरूप विम्ब सूर्य है और तालावमें तैरनेवाले जलपूर्ण नाना कटोरोंमें नाना प्रतिविम्बोंका भी वास्तविक स्वरूप विम्ब सूर्य ही है उसी प्रकार मायामें प्रतिविम्बित चेतन एक ईश्वर तथा अन्तः करणोंमें प्रतिविम्बित चेतन नाना जीवोंका वास्तविक स्वरूप सामान्य चेतन ब्रह्म ही है। जीव ईश्वरमें उपाधिकृत भेद केवल प्रतीति मात्र है, स्वरूपतः अभेद है। जैसा कि शास्त्र भी उपदेश करते हैं :—

"कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः
कार्य-कारणतां हित्वा पूर्ण-बोधोऽवशिष्यते ॥

'अविद्योपाधिको जीवो मायोपधिक ईश्वरः'। "मायाऽविद्यारहितं ब्रह्म"। एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ ब्रह्मणः प्रतिविम्बत्वाज्जीवो ब्रह्मैव नापरः। बुद्धयव-च्छिन्न-चैतन्यं कूटस्थ इति कथ्यते ॥

जैसे घटजलाकाशका वास्तविक स्वरूप घटाकाश है और कल्पित स्वरूप प्रतिविम्बिा-काश है, उसी प्रकार जीवका वास्तविक स्वरूप घटाकाशवत् अन्तःकरण उपहित चेतन कूटस्थ है और कल्पित स्वरूप अन्तःकरण प्रतिविम्बित चेतन है। जीवके वास्तविक स्वरूप कूटस्थका ब्रह्मसे मुख्य-सामानाधिकरण्य है और जीवके कल्पित स्वरूप अन्तःकरण प्रतिविम्बित चेतनका बाध-सामानाधिकरण्य है।

जीवका वास्तविक स्वरूप कूटस्थ ही ब्रह्मरूप होने से निर्विकार नहीं है बल्कि कल्पित स्वरूप प्रतिबिम्ब चेतन भी निर्विकार है, केवल उपाधिके विकार प्रति-विम्बित चेतनमें स्फटिक मणिमें रक्त पुष्पकी रक्तताकी भाँति प्रतीत होते हैं, विकारी नहीं करते। यदि स्थूल सूक्ष्म देहोंके विकार जीवको विकारी कर देते तो सुषुप्तिमें भी विकारोंकी प्रतीति होनी चाहिये। अतः पंचदशीकारका मत है :—

चिदाभासेऽप्यसंभाव्या ज्वराः साक्षिणि का कथा।
एवमप्येकतां मेने चिदाभासो ह्यविद्यया ॥
(पंचदशी)

न त्वं देहो न ते देहो भोक्ता कर्ता न वा भवान्।
चिद्रूपोऽसि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखं चर ॥
(अष्टावक्र गीता)

पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः।
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा ॥
रागेच्छा-सुखदुःखादि-बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः ॥
(आत्म-बोध)

जैसे नेत्र सबको देखता है परन्तु अपने को नहीं देखता उसी प्रकार जीव जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं को जानता है परन्तु अपना स्वरूप नहीं जानता। इसी भूलके कारण

देहोंके विकार को अपने ही विकार जानकर निर्विकार ब्रह्मसे एकता करनेसे डरता है।

ब्रह्मका अंश होनेसे जीवमें ब्रह्मके सत्-चित्-आनन्द लक्षण भी हैं परन्तु अविद्या-ग्रस्त होनेके कारण उन लक्षणों को नहीं अपनाता तथा प्रतीति मात्र उपाधिके विकारोंसे अपने को विकारी मानकर दीन हो रहा है।

जीव को यह विचार करना चाहिये कि जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें मेरा अन्वय है और अवस्थाओंका परस्पर व्यतिरेक है। अतः मैं सत् हूँ और अवस्थाएँ मिथ्या हैं। मैं तीनों अवस्थाओंका प्रकाशक होनेसे चेतन हूँ और प्रकाश्य होनेसे तीनों अवस्थायें जड़ हैं। भूमा और परम-प्रिय होनेसे मैं आनन्द रूप हूँ तथा अल्प होनेसे तीनों अवस्थाएँ दुःख रूप हैं। यदि मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म से भिन्न होता तो मैं सच्चिदानन्द रूप अनुभव से सिद्ध न होता। अतः विशेष चेतन जीवको उपाधिकृत परिच्छिन्नता, नानात्व तथा विकारों की प्रतीतिकी परवाह न करके निर्विकार निराकार निर्द्वैत निरुपाधिक सामान्य चेतनका ही अभिमान करना चाहिये तथा स्वप्नवत् भ्रममात्र देहाभिमानका परित्याग कर देना चाहिये। इसी को मोक्षदायक ज्ञान कहते हैं तथा वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म को भूलकर देहोंमें अभिमान करना ही बन्धका हेतु अज्ञान है। जैसे कर्ण अज्ञान कालमें जब अपने को दासी-पुत्र समझता था तब भी कुन्तीपुत्र ही था उसी प्रकार जीव अज्ञान कालमें भी नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त व्यापक परमानन्द रूप ब्रह्म ही है। ज्ञानसे केवल अविद्या तथा अविद्या जनित संशय भ्रमकी निवृत्ति हो जाती है।

ज्यों अविकृत कौन्तेय में राधा पुत्र प्रतीत।
चिदानन्द घन ब्रह्म में, जीव भाव तेहि रीत॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

एक ऐसा भी युग बीत गया जब संसार में इतनी पुस्तकें न थी। इतना ज्ञान एकत्रित करने का साधन न था। मगर उस समय के ऋषि-मुनि आज भी आदर के पात्र हैं। उन्होंने अपने आपको आतमा में लीन कर दिया था। हृदय में उठने वाले सत्य की जानने को कोशिश की थी। इसलिए वे महात्मा कहलाने के अधिकारी हुए।

आज हमारे पास दुर्लभ, अमूल्य विचारों का संग्रह अवश्य है मगर आसक्ति नहीं।

यदि हम अपने दैनिक जीवन में सद्ग्रन्थों के लिए थोड़ा समय निकालें तो दूसरे कार्यों में भी बड़ा आनन्द आएगा।

संसार सत्य है या मिथ्या ?

ले०—काशीनाथ पाण्डेय

हमारे अनुभव में दो प्रकारके पदार्थ आते हैं, जो दिन और रातके समान परस्पर परम विरुद्ध होते हुए भी एक ही देश और एक ही कालमें दूध और पानीके समान मिले हुएसे प्रतीत होते हैं। परन्तु यह क्या कभी सम्भव हो सकता है कि एक जड़, सविकार, त्रिगुणमय तथा दृश्य पदार्थका गठबन्धन एक ऐसे पदार्थ-के साथ हो जाय जो चेतन, निर्विकार, त्रिगुणातीत तथा द्रष्टा हो। क्या किसीने अन्धकार को सूर्यका आलिङ्गन करते हुए देखा है ? यदि नहीं, तो यहाँ यह गठबन्धन कैसा ? इस गुत्थी को सुलझानेके लिए बड़े-बड़े वैज्ञानिक आगे बढ़े, किन्तु सफलता कितनों को मिली ? द्वैतवादी कहता है, जड़ अन्धा है चेतन लँगड़ा। एक को दीखता नहीं, और दूसरेसे चला नहीं जाता। बस, लँगड़ेकी आँखें, और चलने लगे अन्धेके पैर, फिर क्या था ? दोनोंका बेड़ापार हो गया।' इस मतमें संसार सत्य है तथा त्रिगुणमयी प्रकृतिका परिणाम है। अब सहज ही प्रश्न उठते हैं कि प्रकृति निराकार है या साकार ? यदि निराकार, तो निराकारमें से साकार संसार कैसे टपक पड़ा। यदि साकार, तो उसके रहनेके लिये एक और देशकी कल्पना करनी पड़ेगी। फिर यदि प्रकृतिका परिणाम संसार है, तो प्रकृति रही कहाँ ? दूधसे दही बन गया, तो दूध रहा कहाँ ! इससे जिज्ञासा की शान्ति तो हुई नहीं, उलटे और उलझन पड़ गयी।

अब आगे बढ़ता है शून्यवादी, जिसने जड़ चेतन दोनोंकी ही दाढ़ीमें आग लगा दी। चले थे घास उपारने, और उखाड़ फेंका वाटिकाके सभी पेड़ पौदोंको भी ! न जड़ सच्चा न, चेतन सच्चा ! सब मिथ्याही मिथ्या ! परन्तु यह क्या सम्भव है कि बिना सत्यके सहारे कोई मिथ्या वस्तु कहीं टिक सके ? ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं है कि मिथ्या वस्तुका बोध होने पर अधिष्ठान रूपसे कुछ अवशिष्ट न रह जाय। मिथ्या सर्पका बोध होने पर भी रज्जु अवशिष्ट रह जाती है या नहीं ? तब यहाँ भी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई।

अब आता है वेदान्त केसरी जिसकी गर्जनाके सामने सभी बगलें झाँकने लग जाते हैं। उसने न तो दोनोंको सत्य ही माना, और न दोनोंको साफ ही कर दिया, बल्कि एक को अधिष्ठान रूपसे सत्य और दूसरेको अध्यस्त रूपसे मिथ्या मान-कर इस उलझी हुई गुत्थीको सुलझा दिया। जब दोनोंमें से सत्य पदार्थ एकही है, और दूसरा भ्रम यानी प्रतीति मात्र है तो यह प्रश्न ही नहीं

इस स्पुतनिक युग में

अध्यात्मविद्या की आवश्यकता

एक विचारक

चित्रकारके सामने सुन्दर स्वच्छ सादा कागज आता है, वह क्षणभरमें अपनी लेखनीके प्रहारों से उसे काला-पीला कर डालता है। हाँ, वह उस पर अच्छे-से-अच्छे चित्र भी बना सकता है और भद्दे-से-भद्दे भी। शिशुका नन्हा-सा हृदय कितना स्वच्छ है ? कितना कोमल ? किसी प्रकारका संकोच उसे नहीं। सभी अपने हैं, पराया कोई नहीं। सभीकी गोदमें अनायास चला जाता है, प्राणीमात्रके कष्टोंको देखकर वह चीख पड़ता है। माता-पिताकी शिक्षा आरम्भ होती है—यह डेडी है, यह मम्मी है, यह अपना है, वह पराया है। शिशुका वह कोमल क्रीड़ातुर हृदय थोड़े समयमें ही अपने-परायेकी काली रेखाओंसे भर जाता है। उसकी विस्तृत विहार-धरित्री स्वतः संकुचित होती जाती है। अपनेसे राग, परायेसे उपेक्षा या द्वेषके बीज उसके हृदय पर अङ्कुरित हो जाते हैं। स्कूल की छायामें आतेही उसका जीवन दल-दलकी ओर बढ़ता है—यह हमारा दल है, वह दूसरोंका दल है। कॉलेजमें पहुँचने पर तो वर्गोंका निर्माण, दलोंकी लीडरी, दूसरोंके दोषों का गहराईसे अन्वेषण और प्रचार एवं क्रान्तिकारी विस्फोटक तत्त्वोंका आविष्कार एकमात्र ध्येय बन जाता है।

बड़े-बड़े नेता यह कहते पाये जाते हैं कि पार्टीबन्दीके बिना मनुष्य अपनी उन्नति नहीं कर सकता। अवश्य आजका मानव एक-दूसरे की होड़में विज्ञानके प्रोन्नत शिखर पर पहुँच रहा है, विशाल आकाशके वक्षःस्थलको चीरता हुआ लोकान्तरों पर आधिपत्य जमानेका प्रयत्नभी कर रहा है। किन्तु क्या इस तथ्यको भुलाया जा सकता है कि यह महामानव आज प्रलयकी

शेष पृष्ठ २० पर

बन सकता कि दो परस्पर विरुद्ध पदार्थ एक साथ कैसे रह सकते हैं। वेदान्त केवल ब्रह्मको ही परमार्थ सत्य मानता है और इस संसारको उस अखण्ड एकरस नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप सच्चिदानन्दघन परब्रह्ममें माया-द्वारा रज्जु-सर्पवत् कल्पित मानता है। अर्थात् जिस प्रकार सिनेमा संसार का अधिष्ठान रूप एक अखण्ड प्रकाश अपने निज रूपको न छोड़ता हुआ रूप फिल्म रूप उपाधि-द्वारा निखिल नाम-रूपात्मक सिनेमा संसारके रूपमें भासमान होता है, वैसे ही वह शुद्ध ब्रह्मही अपने निज स्वरूप को न छोड़ता हुआ माया उपाधि-द्वारा इस निखिल नाम-रूपात्मक प्रपञ्चके रूपमें भासमान हो रहा है। इसे ही विवर्त-वाद कहते हैं। इसी विवर्तवादमें निरत महात्मागण सकल नाम-रूप का बोध करके उस अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्ममें अभेद भावसे रमण करते हैं। —:०:—

अस्तेय

दूसरेकी वस्तु अपहरण न करके, धर्मके साथ अपनी जीविका करनेको अस्तेय कहते हैं। मनु महाराजने धर्मपूर्वक धन कमानेके निम्नलिखित दस साधन बतलाये हैं :—

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः॥

अर्थात् १—अध्ययन-अध्यापन का कार्य करना, २—शिल्प-विज्ञान-कारीगरी, ३—किसीके घर नौकरी करना, ४—किसी संस्थाकी सेवा करना, ५—गोरक्षा-पशुपालन, ६—देशविदेश घूमकर अथवा एक स्थानमें दूकान रखकर व्यापार करना, ७—कृषि करना, ८—सन्तोष धारण करकेजो मिल जाय उसी पर गुजारा करना, ९—भिक्षा माँगना, १०—व्याज-साहूकारी इत्यादि, ये दस बातें जीविका की हेतु हैं।

अपने अपने वर्ण-धर्मके अनुसार इन्हीं व्यवसायोंमें से कोई व्यवसाय मनुष्यको चुन लेना चाहिये। व्यवसाय कोई भी हो, ईमानदारी और सचाईके साथ करना चाहिए। दूसरेका धन बेईमानी या चोरीसे हरण करनेका प्रयत्न न करना चाहिए।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

ईशोपनिषद्

अर्थात् यह सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् परमात्मासे व्याप्त है—ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसमें वह न हो, इसलिए उससे डरो। ईमानदारी के साथ, सच्चाईसे जितना मिले, उसीका भोग करो। किसीका धन अन्यायसे लेनेका लालच मत करो। महर्षि व्यासजी ने कहा :—

येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण धिगस्तु तान्।
धर्मं वै शाश्वतं लोके न जह्याद्धनकांक्षया॥

महाभारत, शान्तिपर्व

अर्थात् जो धन धर्मसे पैदा किया जाता है, वही सच्चा धन है, अधर्मसे पैदा किये हुए धन को धिक्कार है। धन सदैव रहनेकी चीज नहीं है, और धर्म सदैव रहता है। इसलिए धनके लिए धर्म कभी न छोड़ो।

धर्मकी अवहेलना करके जो लोग चोरी, घूस अथवा व्यापार इत्यादिमें मिथ्याचार या धूर्तताका व्यवहार करके धन जोड़ते हैं उनको उस धनसे सुख कदापि नहीं मिलता। अन्याय से बहुत-सा जोड़ा हुआ उनका धन दुर्व्यसनोंमें खर्च होता है, इससे उनका शरीर मिट्टी हो जाता है, और ऐसे नीच धनवान् लोक परलोक दोनों बिगाड़ते हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने गीता में ऐसे अधमों का अच्छा वर्णन किया है :—

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनाऽर्थसंचयान्॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

गीता, अ० १६

अर्थात् सैकड़ों आशाओंकी फाँसियोंमें बँधे हुए, कामक्रोधमें तत्पर विषय-सुखके लिए अन्यायसे धन संचय करनेकी चेष्टा करते हैं। चित्त चंचल होनेके कारण भ्रान्तिमें पड़े रहते हैं। मोहजालमें लिपटे रहते हैं। काम-भोगोंमें फँसे रहते हैं। ऐसे दुष्ट बड़े बुरे नरकमें पड़ते हैं।

इसके सिवाय जो धन अधर्मसे इकट्ठा किया जाता है, वह बहुत समय तक ठहरता भी नहीं—जैसा आता है वैसाही चला जाता है। चाणक्य मुनिने कहा है कि—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥

चाणक्यनीति

अर्थात् अधर्म और अन्यायसे जो द्रव्य उपार्जन किया जाता है, वह सिर्फ दस वर्ष ठहरता है और ग्यारहवें वर्ष जड़मूलसे नाश हो जाता है। चाहे चोरीहो जाय, चाहे आग लग जाय, चाहे स्वयं वह अधर्मी नाना प्रकारके दुराचारोंमें ही उसको खर्च कर दे, पर वह रहता नहीं, और न ऐसे धनसे उसको सुखही होता है। इसलिए अपने बाहुबलसे धर्मके साथ उद्योग करते हुए जीविकाके लिए धन कमाना चाहिए। उद्योगी पुरुषके लिए धनकी कमी नहीं। राजर्षि भर्तृहरि कहते हैं :—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।
दैवं प्रधानमिति कापुरुषा वदन्ति॥
दैवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या।
यत्नेकृते यदि न सिध्यदि कोऽत्रदोषः॥

अर्थात् जो पुरुष उद्योगी हैं, अपने बाहुबल का भरोसा करके सतत परिश्रम करते रहते हैं, उन्हींके गलेमें लक्ष्मी जयमाल पहनाती है; और जो लोग कायर आलसी हैं वे भाग्यका भरोसा किये बैठे रहते हैं। इसलिये भाग्यका भरोसा छोड़कर शक्तिभर खूब पौरुष करो। यत्न करो। यत्न करने पर यदि सफलता प्राप्त न हो; तो फिर यत्न करो। देखोकि, हमारे यत्नमें कहाँ दोष रह गया है। उस दोषको खोज निकालकर जब निर्दोष यत्न करोगे; तब सफलता अवश्य मिलेगी। नीचे लिखे हुए गुण जिस उद्योगी मनुष्यमें होते हैं, उसके पास धनकी कमी नहीं रहती।

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं।
क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्॥
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च।
लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥

जिस पुरुषमें उत्साह भरा हुआ है, जो आगेकी बात ताड़कर बराबर दक्षतासे उद्योग करता रहता है, कार्य करनेकी चतुरता जिसमें है, जो व्यसनों में नहीं फँसा है, जो शूरवीर और आरोग्य-शरीर है, जो किये हुए उपकारको मानता है, जिसका हृदय दृढ़ है, और दूसरेके साथ सहृदयता का बर्त्ताव करता है, ऐसे पुरुषके पास लक्ष्मी स्वयं निवास करनेको आती है। इसलिए बराबर उद्योग करते रहना चाहिए।

जयगुरु !

करमन को गति न्यारी, जयगुरू करमन की गति न्यारी ॥ टेक ॥

निरधन को धन दुरलभ देख्यौ, धनी गुनी सुत नाहीं ।
भाग्य-विधाता जो विधि गढ़ि गयौ, अमिट भयौ जग माहीं ।
श्रुति-पुरान गुरु संत बखान्यौ, साधु-संग भव हारी ॥
जय गुरु करमन की गति न्यारी ॥१॥

मानुष देह बड़ौ दुरगंधित, काम-क्रोध मद धार्यौ ।
लोभ मोह माया रचि पचि पचि, जीवन दिव्य बिगार्यौ ॥
जुज-जुग से पातक प्रवंच ले, सरन गह्यो हौं हारी ॥
जय गुरु करमन की गति न्यारी ॥२॥

आके कलियुग सिर पै नाचै, कांचे धट तन पावे ।
आवाँ आगि न ताप लह्यौ, पुनि विपद् वारि गलि जावे ।
सद्गुरु शारदाराम पाँव परि, 'नायक' नाथ निहारी ॥
जय गुरु करमन की गति न्यारी ॥४॥

और नाम, निज धाम-काम तजि, सरन तिहारी पाई ।
'रामटेकड़ी' टेक छड़ी-सी, जरा जान मन लाई ॥
संत तपस्वी उदासीन लखि 'शंकर' जन हितकारी ॥
जय गुरु करमन की गति न्यारी ॥३॥

—श्री नर्मदा शंकर कचरादास 'नायक' पूना

आत्म दर्शन

ले०—मोरेश्वर राव चांदोरकर

[गतांक से आगे]

आग, हवा, पानी, इनके बलसे झगड़ा न करके इनसे नम्रता पूर्वक अपना शरीर बचाना चाहिये।

नहीं तो जैसे शरीरके भीतरी तीन तत्वोंसे बैर करनेसे रोग व मृत्यु होना सम्भव हैं, वैसेही शरीरके बाहरी इन तीन तत्वोंसे बैर करनेसे रोग व मृत्यु होना सम्भव है।

समरस भोजन करनेसे आग, हवा, पानी, ये तीनों तत्व अपना अपना काम यथोचित करते हैं और चित्त शान्त रह, ध्यान करनेके योग्य होता है। तव स्वच्छ, शान्त स्थानमें अपना आसन जमाना, चित्त व इन्द्रियोंकी चाल रोककर अपने सामने दर्पण रख अपनीही त्रिकुटीमें ध्यान जमाना चाहिये। यदि दर्पणमें अपना पूरा शरीर दिखाई देवे तो बहुतही अच्छा होगा। भय छोड़, ब्रह्मचर्यसे रह, मन वशकर ध्यान अपनी ही त्रिकुटीमें जमाना उचित है। जैसे हम अपने मित्रको देखते हैं वैसे ही हम दर्पणमें अपनी ही त्रिकुटीमें देखें।

इकटक देखनेकी आवश्यकता नहीं है, पलक लगें, खुलें आसन चाहे जैसाहो केवल ध्यान त्रिकुटीमें जमा रहे तो ठीक है।

ऐसा ध्यान रोज १५ मिनट छः मास तक जमाने पर दर्पण की आवश्यकता न रहेगी।

अपना चेहरा व त्रिकुटी आप ही की त्रिकुटी में ऐसा जम जावेगा जैसा अक्षर का आकार जम जाता है और फिर तख्तेकी आवश्यकता नहीं रहती।

छः मास अभ्यास होने पर आपका सूक्ष्म शरीर जो नींद में घूमनेको जाता है, वह त्रिकुटी में ध्यान जमाने पर आपके सम्मुख खड़ा हो जाया करेगा और इच्छागामी हो जावेगा—

अपने शरीर दो हैं :—

(१) स्थूल शरीर जो मिट्टी का बना है और चर्मचक्षु से दिखाई देता है और (२) सूक्ष्म शरीर या लिंगशरीर जो अदृश्य है परन्तु ध्यान जमाने का अभ्यास होने पर दिखाई देता है और अपनी इच्छानुसार काम कर सकता है—

अपने शरीर की पाँच अवस्था है :—

जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या और उन्मनी। ध्यान तुर्यावस्था है—जो लोग समरस भोजन नहीं करते या वीर्य नाश करते हैं उनको ध्यानकी तुर्यावस्था नहीं मिलती क्योंकि

उनका चित्त शांत व स्थिर नहीं हो सकता। यदि कोई साधक अथवा सब रस या कोई एक रस बिलकुल छोड़ देवे तो ऐसा करने से आग, हवा, पानी बिगड़कर रोग व मृत्यु होना सम्भव है।

उदाहरणार्थ :—

कोई भी मनुष्य जो ध्यान करना चाहता है

(१) नमक खाना छोड़ देवे या चिकना खाना छोड़ देवे तो उसके शरीर में की अग्नि अर्थात् पित्त अशक्त हो जावेगा।

(२) मीठा या खट्टा खाना छोड़ देवे तो जल अर्थात् कफ अशक्त हो जावेगा।

(३) कडुआ, तीखा, छोड़ देवे तो वायु अर्थात् वात अशक्त हो जावेगा।

छहों रस छोड़ देवे तो अग्नि, जल, वायु अर्थात् पित्त, कफ, वात, तीनों बिगड़ जावेंगे, तब वह मनुष्य रोगी होगा और उसकी मृत्यु होना भी संभव है।

जल का ब्रह्मा, वायु का विष्णु, अग्नि का महेश, ये तीनों तत्वों के तीन देवता माने गये हैं। ब्रह्मा उत्पन्न करने वाला, विष्णु पालनेवाला और महेश मारनेवाला है

खट्टा, मीठा, खारा, तीखा, चिकना, कडुआ ये छः रस अपने भोजन में समरस होना चाहिये कोई भी रस कम या अधिक न होना चाहिये।

योगी को चाय, काफी, तमाखू, पान, गांजा, भांग, अफीम, चरस, चंडू, शराब, कोकीन आदि कोई भी नशा न करना चाहिये। क्योंकि इनसे तत्व बिगड़ते हैं और चित्त शांत नहीं हो सकता और न ध्यान जम सकता है।

चिकना खाने से काम, खारे से क्रोध, मीठे से लोभ, खट्टे से मोह, कडुए से मद और तीखे से मत्सर इस प्रकार छः रसों से छः रोग पैदा होते हैं।

चिकने और खारेसे अग्नि, मीठे और खट्टे से जल और कडुवे और तीखे से वायु पैदा होता है।

समरस भोजन करनेवाले मनुष्य के छः रस सम होने के कारण अग्नि, जल, वायु, तीनों यथोचित काम करते हैं और चित्त शांत रह कर ध्यान जम सकता है।

जिसके शरीर में के अग्नि, जल, वायु इनमें से एक, दो, या तीनों बिगड़ते हैं उसका चित्त शांत नहीं हो सकता और न वह ध्यान जमा सकता है। वीर्य नाश करनेवालेके शरीर में के तीनों तत्व बिगड़ जानेके कारण वह ध्यान नहीं जमा सकता।

सुरकना, पीना, चाटना, चूसना, गुटकना, चबाना ये छः भोजन के प्रकार हैं।

गरम गरम कभी भी न खाना चाहिये, अधिक ठंढा भी न खाना चाहिये, अधिक रसीला भी न खाना चाहिये, अधिक जल भी न पीना चाहिये; क्योंकि इन नियमों के विरुद्ध खाने-पीने से अग्नि, जल, वायु बिगड़ते हैं और चित्त शांत नहीं रह सकता है।

यदि हम जड़ का ध्यान करें तो जड़ योनि में जावेंगे, यदि चैतन्य का ध्यान करें तो चैतन्य योनि में जावेंगे और पुनर्जन्म व आवागमन के चक्र में पड़े रहेंगे। परन्तु योगी

सात्विक आहार

काका कालेलकर

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥
(छन्दोग्य. ७।२६।२)

आहार शुद्ध रहने से मनुष्य का चरित्र, उसका मन और उसके भाव शुद्ध होते हैं, सत्व-शुद्धि होनेसे स्मृति ध्रुव और निश्चल होती है स्मृति-लाभ होने से सारे जंजालों से पिंड छूट जाता है।

का अन्तिम उच्च ध्येय ब्रह्ममें लीन होना है।

और गीता के वचनानुसार :-

प्रयाणकाले मनसाचलेन ।
भक्त्या युतो योगबलेन चैव ॥
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् ।
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥
अ० ८ ॥ श्लो० १० ।

शरीर छोड़ने के समय त्रिकुटी में ध्यान जमाके योगी ब्रह्म में लीन हो सकता है परन्तु त्रिकुटी अपने ही शरीर में हैं और जिसको अपनी ही त्रिकुटी में ध्यान जमाने का पक्का अभ्यास है वही मरने के समय आसानी से ध्यान जमा सकेगा—

—क्रमशः

(शेष अगले अंक में देखिये)

इस वचन पर कुछ गम्भीरता से विचार करना चाहिये। सामान्य अर्थ तो स्पष्ट ही है यदि हम मांसादि तमोगुणी अथवा विकारोत्तेजक चीजोंको न खायें, बासी सड़ी-गली चीजोंको न खायें तो हमारा शरीर मन पवित्र रहेगा। आहार शुद्धिका अर्थ इतना ही किया जाता है कि शास्त्रोंमें जिन वस्तुओंको खानेकी मनाही की गई हो, वे हमें नहीं खानी चाहिएँ।

जो चीज मनुष्य के अन्दर जाती है, उसका असर उसके शरीर और मन पर हुए विना रहता नहीं; और मनुष्यके मुखमें से अथवा उसके शरीरमें से जो चीजें निकलती हैं, वे यदि दुर्गन्ध वाली हों, रोगयुक्त हों, तो सारे वायुमंडलको और समाजको उससे जरूर हानि पहुँचेगी।

किसी एक ऋषिको अपच हो गया था। उनके मुँहमें से जो उच्छ्वास निकलता था, वह दुर्गन्धवाला था और इससे आस-पास बैठने वाले लोगोंको हानि पहुँचेगी, यह सोचकर वह किसीको अपने पास बैठने नहीं देते थे। फिर भी उनका प्रवचन धर्म-तेजसे भरा होनेके कारण हजारों लोग सुननेके लिए आते थे और उनके चरित्र पर अच्छेसे अच्छा धार्मिक असर होता था।

यदि कोई कवि चरित्र-भ्रष्ट हो तो उसका असर समाज पर अवश्य होगा। उसके अच्छेसे अच्छे वचनोंका भी समाजपर जरा भी असर नहीं होगा। परन्तु यदि उसके चरित्र के विषयमें लोग कुछ भी नहीं जानते होंगे तो उसके वचनों का सीधा अर्थ समझ कर लाभ उठा सकेंगे।

मनुष्य के स्वभावकी कमजोरी एक अलग वस्तु है और दुष्टता एक अलग वस्तु। किसीके विषयमें विचार करते समय हमें यह भेद भूल नहीं जाना चाहिए।

अब हम छांदोग्य उपनिषदके उद्धृत वचनों पर जरा गम्भीरतासे विचार करेंगे। आहारका अर्थ केवल खाने-पीनेकी वस्तुएँ इतना सीमित नहीं करना चाहिए। हमारी सारी इन्द्रियां जो-जो चीजें लेती हैं, पुष्टिकी दृष्टिसे या सुखकी दृष्टिसे जो-जो स्वीकार करती हैं, वे सब आहार हैं। हम अपनी आँखोंसे जो कुछ देखते हैं, कानोंसे जो कुछ सुनते हैं, वह भी आहार ही है। खाने-पीनेकी वस्तुओंके विषयमें जैसी सावधानी रखनेकी आवश्यकता है, वैसी ही इन्द्रियोंके सारे व्यापारोंके विषयमें भी आवश्तक है।

अब हम विचार करेंगे कि आहार-शुद्धि की किसलिए जरूरत है। हम यदि रजोगुण और तमोगुण बढ़ानेवाली चीजोंका सेवन करेंगे तो सत्व-शुद्धि पर उसका खराब ही असर होगा। शास्त्रोंमें ऐसी चीजोंका वर्णन दिया गया है। उस जमानेकी धारणाके अनुसार यह उचित ही था। परन्तु आज हम यह नहीं मानते। टमाटर-जैसे पदार्थोंको पहले लोग निषिद्ध मानते थे, आज हम ऐसा नहीं मानते। अनुभव और ज्ञानकी वृद्धिके साथ पुराने वचनोंमें हमें परिवर्तन करना पड़ेगा। फिर भी यह सिद्धान्त तो त्रिकालके लिए सही है ही कि आहार का असर चरित्र पर हुए बिना रहता ही नहीं।

फिर भी आहार-शुद्धि की एक और महत्व

अध्यात्मविद्या की आवश्यकता

पृष्ठ १३ कालम २ का शेष

करारों पर खड़ा है? चारों ओर भयही भय, दुःख-ही-दुःख। यह है भौतिक शिक्षाका अन्तिम निष्कर्ष। यह वह भयङ्कर चित्र है, जो आजके कुशल कलाकारने उस शिशु हृदय पर अङ्कित कर रखा है। दूसरोंकी गोदमें आनन्द लुटने वाला, दूसरोंकी आहों पर चीख पड़ने वाला वह शिशु-हृदय आज दूसरों पर विपत्तियोंके पहाड़ ढाना चाहता है।

अध्यात्म शिक्षासे अपने-परायेका कुत्सित भाव अहमता-ममताके क्षेत्रका संकोच और एक-दूसरेसे भयका वातावरण तैयार नहीं होता, प्रत्युत "वसुधैव कुटुम्बकम्" "आत्मवत् सर्वभूतानि" जैसी उदात्त भावनाएँ जाग्रत होती हैं, भय दूर होता है, अभय और सुख संव्याप्त होता है। अध्यात्म विद्या इस मानवको इसके संकुचित क्षेत्रों से बहुत ऊपर उठाकर इसके हृदयका समस्त कलङ्कित चित्र मिटा सकती है। यह मानव फिर अपने उस बालसुलभ शुद्ध हृदयको प्राप्त कर सकता है, जिसके लिए तत्ववेत्ता भी लालायित हैं—"पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्"।

—:o:—

की बात है, जिसपर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। शुद्ध आहार वह है जो हमें ईमानदारीसे मिला हो। अगर सात्त्विक पदार्थ हम कहीं से चोरी करके लाए हों तो उसके सेवनसे हमारी सत्व-शुद्धि खतरेमें पड़े बिना नहीं रहेगी। अन्यायसे गरीबोंको लूटकर अथवा चूसकर हम जो धन अर्जित करते हैं, वह पापमूलक है। उसके सेवनसे चरित्र भ्रष्ट होता है। आहार-शुद्धिका अर्थ केवल शुद्ध भोजन ही नहीं, बल्कि सच्चा जीवन भी है। कहीं भी किसी के अज्ञान का या उसकी दुर्दशाका हम गैरवाजिब लाभ उठाएँ तो हमारी आहार-शुद्धि भंग हो गई, ऐसा जानना चाहिये।

ईमानदारीका आहार भी यदि हम परिवार के सारे सदस्योंको बाँटकर न खाएँ, हमारे आहारपर जिन-जिन लोगोंका न्यायपूर्वक अधिकार है, उन्हें हिस्सा दिए बिना ही खाएँ, उपभोग करें, तो वह भी आहार-शुद्धिके व्यवहार से च्युत होना गिना जाएगा।

आहार और शुद्धि इन दोनों शब्दों का व्यापक अर्थ करनेसे हमें उपनिषद् के वचनोंका सही अर्थ समझमें आ जाता है और सत्व-शुद्धि क्या है, यह भी भलीभांति पता चलता है। सत्वका अर्थ है हमारे शरीर, मन, चित्त, अहंकार आदिका महत्वपूर्ण साररूप भाग। जिन-जिन बातोंसे हमारा चरित्र बना है, वे सब बातें सत्वमें आ जाती हैं। सत्व अर्थात् चरित्र।

ईशोपनिषद्में कहा है—'मा गृधः कस्यस्विद धनम्।' किसीका धन बहाना नहीं, किसी के धनपर लोभी गिद्धकी दृष्टिसे देखना नहीं। समाजके पुरुषार्थसे जो धन संग्रह होता है, वह समाजका है। जो वस्तुएँ समाजकी ओरसे पारितोषिक रूपमें मिलती हैं, वे अपनी हैं। जो हमें नहीं मिली है, वे यदि हम लें तो उसमें 'अदत्त-आदान' का दोष लगता है और हमारी आहार-शुद्धि भंग हो जाती है।

श्री शंकराचार्यने अपने एक स्तोत्रमें थोड़े शब्दोंमें इन सब बातोंको स्पष्ट कर दिया है। 'यल्लभते निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्।' अपनी स्वयंकी मेहनतसे जो कुछ धन अर्जित करो, उसीसे अपने चित्तको सन्तोष दो। अपनी मेहनतसे जो कुछ भी आहार या आराम मिले, उससे सन्तोष मानो और अपनी प्रसन्नता कायम रखो—यही है आचार्यका उपदेश। आहार-शुद्धिका यह सबसे बड़ा भाग है।

इन्द्रियों द्वारा जिस किसी विषयका सेवन होता है, उसकी शुद्धि होनेसे मनुष्यका सारा व्यक्तित्व सत्त्व-शुद्ध होता है! उसके विचार, उसकी दृष्टि, उसका उद्‌देश्य—ये सब शुद्ध होनेसे उसमें एक प्रकारकी जागरूकता आती है। 'मैं कौन हूँ? मेरे जीवनका उद्‌देश्य क्या है? किस आदर्शको लेकर मैं जी रहा हूँ?' ऐसी जागरूकताको स्मृति कहा गया है। स्मृति का नाश होनेसे मनुष्यका सर्वनाश होता है। भगवद्‌गीतामें स्थितप्रज्ञका वर्णन करते समय इसी स्मृतिका वर्णन किया गया है। जब मनुष्य वासनाके वशीभूत होकर असंयत होता है, तब वह स्मृति खो बैठता है। पर जिससे असंयम के सारे कारण दूर रहेंगे वह स्मृतिवान् रहेगा। ऐसा स्मृतिवान् मनुष्य ही आत्म-साक्षात्कार कर

सकता है। स्मृति-लाभसे बुद्धि ऐसी शुद्ध, जागृत और तेज होती है कि मनमें जरा भी संदेह नहीं रहता। इसीको ग्रंथियोंका टूटना कहा जाता है। मोक्ष का यह वर्णन है।

अतः मनुष्यको इसकी साधना करनी चाहिए। यह मुख्यतः प्राणायाम आदिकी नहीं, अपितु यम-नियम आदि की है। यम, शम, दम—यह सब आहार-शुद्धिका ही फल है।

भगवद्गीतामें दैवी सम्पत्का जो वर्णन किया गया है, उसमें अभयके बाद सत्त्वशुद्धिको ही स्थान दिया गया है। यही है मुख्य साधना।

—हिन्दुस्तान सा० से साभार

मानसिक विकास पर एक दृष्टि

ले०—श्री जयकान्त झा,

हमारी उपासना एवं कार्य क्षमता तभी सच्चा रूप धारण करती है जब उसमें हमारे मन का संयोग होता है। यदि हम हाथ जोड़, विशेष रूपसे ध्यानावस्थित होकर, आँख मूँदे हुए भगवानके सामने नत-मस्तक होकर प्रार्थना करने की मुद्रा बनावें, किन्तु हमारा मन कहीं अन्यत्र हो तो वह प्रार्थना सच्ची न होकर केवल विडम्बना मात्रही होगी। इसके विपरीत यदि किसी अपवित्र स्थानमें बैठने पर भी यदि हम हृदय से प्रभुका स्मरण करें अथवा उनसे किसी प्रकार की विनती करें तो वह सच्चा ध्यान अथवा सच्ची प्रार्थना होगी। इससे सिद्ध होता है कि बाहरी आचार-व्यवहारकी उतनी प्रधानता नहीं है जितनी मनकी एकाग्रताकी। हमारा मन किस रूपमें कब कहाँ जा रहा है इस विषयमें हमें सजग रहनेकी आवश्यकता है। हमारा मन रथमें जुते हुए उस घोड़ेके समान है जो अनियन्त्रित होने पर सवारको गड्ढे, तालाब, नदी, खाई अथवा और किसी भयानक स्थानमें गिराकर उसे नष्ट कर सकता है। इसलिए हमें अपने मनको सदा नियन्त्रण में रखते हुए उसे अपने लक्ष्यकी ओर लगानेका प्रयत्न करते रहना चाहिए।

हम वहीं हैं, जहाँ हमारा मन है। यदि हम मन्दिरमें हैं और हमारा मन वेश्यालय अथवा सिनेमागृहमें है तो हम उस समय सचमुच मन्दिरमें नहीं, अपितु उस अपवित्र स्थानमें हैं जहाँ हमारा मन चक्कर काट रहा है, यह नितान्त सत्य है। जबतक हमारा मन विषयाकार होता रहता है, तबतक उसे सम्भालनेकी बड़ी आवश्यकता है। मनको नियन्त्रित करते करते जब वह स्थिति आ जाती है कि निरन्तर परमपिता परमात्माका ही एकमात्र चिन्तन होने लगता है उस समय नियन्त्रणका प्रश्न समाप्त हो जाता है और मनुष्य उस अवस्थामें पहुँच जाता है जिसे ब्राह्मी स्थिति कहते हैं। किन्तु अनन्त जन्मोंके पुण्योदयसे ही यह स्थिति प्राप्त होती है।

हम सबमें भोगोंकी कामना होती है। यह कामना हमारे मन द्वारा विभिन्न रूपोंमें व्यक्त

होती है। हम संकल्प-विकल्प करके अपने मनके नाना प्रकारके आकार बनाते हैं और सांसारिक वैभव एवं विषयोंके चिन्तनमें लगे रहते हैं। हमारा मन सदा विषयोंकी ओर दौड़ा करता है और उसकी प्राप्तिके लिए व्यग्र रहता है। विषयों का यह नियम है कि मनुष्य जितनी ही उनकी ओर दौड़ता है, उतनाही वे दूर होते चले जाते हैं। क्योंकि सांसारिक भोग एवं विषय अपूर्ण हैं और जो वस्तुएँ स्वयं अपूर्ण हैं, वे किसी व्यक्तिको कैसे पूर्णता (सच्ची शान्ति) प्रदान कर सकती हैं ? इसके विपरीत केवल भगवानही पूर्ण हैं और उन्हींकी प्राप्तिसे पूर्ण शान्ति तथा अखंड आनन्द प्राप्त हो सकता है। यही बात यदि हमारा मन सच्चे अर्थोंमें ग्रहण कर ले तो हमारा दुःख दैन्य सदाके लिए दूर हो जाय।

हम भोग्य पदार्थोंको क्यों चाहते हैं। केवल इसीलिए तो कि हमें उनमें सुखका आभास होता है। यदि हम सुखही चाहते हैं तो क्यों न समस्त सुखोंकी खान भगवानकी कामना करें जिनसे समस्त सुख उत्पन्न हुए हैं और जिनकी कृपापर समस्त विश्व अवलम्बित है। हमें अपने मनको यही समझाना है और यही समझ लेनेपर हमें अपने लक्ष्यकी प्राप्ति होगी।

भगवानकी प्राप्तिके लिए किसी विशेष प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है, उन्हेंतो केवल तीव्र इच्छा मात्रसे ही प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी तीव्र इच्छा विशेषकर संकटकी घड़ियोंमें ही उत्पन्न हुआ करती है। जब सांसारिक विषय वासनाओंकी ज्वालासे संतप्त होकर मन विक्षुब्ध हो उठता है, तब एकमात्र प्रभुको छोड़कर किसीकी ओर ध्यान नहीं जाता और ऐसे समय मन स्वभावतः प्रभुकी ओर एकाग्र होकर उनसे करुण पुकार करता है। क्षण मात्रमें प्रभु भक्तके सम्मुख उपस्थित होकर उसकी मनोकामना पूरी करते हैं। इसीलिए तो माता कुन्तीने भगवान कृष्णसे यही बरदान मांगा था कि मैं जहाँ कहीं जिस अवस्थामें रहूँ, विपत्ति मेरा साथ न छोड़े, क्योंकि विपत्तिमें ही प्रायः आपका स्मरण होता है। साध्वी द्रौपदीके लिए कृष्ण भगवानका वस्त्राकार होकर सतीकी लाज रखना, गजकी करुण पुकार पर भगवानका प्रकट होकर ग्राहसे गजका उद्धार करना आदि सच्ची प्रार्थनाके ही उदाहरण है। इसीलिए हमें सतत अपने मनको विषयाकार न होने देकर भगवदाकार बनानेका प्रयत्न करना चाहिए।

यदि हमारी भूल किसी समय प्रकटहो जाती है तो हमें लज्जा एवं संकोचका अनुभव होता है। यह संकोच केवल इसलिये होता है कि लोग हमारी गलती जान गये। ऐसा संकोच अथवा ऐसी लज्जा बेकार है। लज्जा होनी चाहिए भूल करनेमें, किये हुए पापों पर परदा डालनेमें। यदि हमसे कोई भूल हो जाय तो उसे शीघ्र प्रकट करनेमें ही हमारी महानता है। यदि पाप करनेमें हमें लज्जा आवे अथवा पापोंको छिपानेमें हमें संकोचहो तो इस लज्जा अथवा संकोचसे हम शीघ्रही भगवानकी ओर मुड़ते हैं। हमें सतत अपनी सात्विकी बुद्धिका आश्रय लेकर प्रभु चरणोंमें नत-मस्तक होकर अपने मनको सन्भालते रहनेका प्रयत्न करना चाहिए। हमें प्रभुके परम पावन धाममें जाना है और जिस

रथ पर सवार होकर वहाँ पहुँचना है उसका सारथी हमारा मन है। इसीलिए इस मनकी देखभाल उचित रूपसे करनी चाहिए ताकि यह अपने पथसे हटकर दूसरी ओर न चला जाय।

भगवानमें विश्वास न होनेके कारणही हमें नाना प्रकारके भय सताया करते हैं। जब घट-घट व्यापी सर्वशक्तिमान प्रभु हमारे सखा हैं तो भय किसका ? 'सुहृदं सर्व भूतानां' भगवान के इस बचनको ध्यानमें रखते हुए हमें सतत निर्भय होकर सन्मार्गका अवलम्ब लेते हुए जीवनके प्रत्येक कार्य सुचारु रूपसे करते रहना चाहिए। यही सफलताकी कुञ्जी है।

यदि हम प्रभुको छोड़कर किसी और वस्तु की कामना न करें—अपनी कामनाका लक्ष्य सांसारिक विषयोंकी ओरसे मोड़कर प्रभुकी ओर कर दें तो हमें समस्त सुखोंके केन्द्र प्रभु मिल जायँ और हमारा मनभी धुलकर इतना स्वच्छ हो जाय कि उसमें भगवानकी झाँकी सतत दिखाई देने लगे। इसके लिए हमें यह ध्यान रखना होगा कि जितनी वार किसी वस्तुके लिए कामना उत्पन्नहो, उतनी बार हम उस कामनाको भगवानकी कामनाके आकारमें ढाल लें और ऐसा विचार करे कि एकमात्र प्रभुके सिवा हमें और कुछभी नहीं चाहिए। अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए इससे बढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं है।

यदि भगवानमें हमारा विश्वास नहीं तो जगत् हमारे लिए नरकके सिवा और कुछ नहीं है। स्थूल जगत् एवं इसके भोग हमें अन्धा बना देते हैं और इसकी चकाचौंध हमें प्रतिक्षण व्यग्र करती रहती है। वर्तमान जगत् के प्रायः प्रत्येक क्षेत्रमें भगवान्‌में अविश्वास तथा अश्रद्धा का ताण्डव नृत्य दिखाई पड़ता है और इसी जगत् को सत्य समझकर लोग विषय लोलुपता में पतन की ओर जा रहे हैं। किन्तु ऐसे समय में भी विषयों की कामना से उत्पन्न भयंकर आघात जिस समय मनुष्यों के हृदय को विदीर्ण करते हैं और जब उसे कोई सहारा दिखाई नहीं पड़ता, तब लोग ऐसी अचिन्त्य शक्ति की खोज करते हैं जो उन्हें शान्ति प्रदान कर सके। ऐसे समय में वज्र पापियों एवं नास्तिकों के मुख से भी सहसा निकल पड़ता है—"हे प्रभु! अब तू ही मुझे बचा सकता है।"

सांसारिक वस्तुओं एवं भोग्य पदार्थोंको प्राप्त करने के लिए हमें सर्वदा व्याकुलता बनी रहती है; परन्तु परम कारुणिक प्रभुको पानेके लिये हम व्याकुल नहीं होते। सांसारिक पदार्थों के लिए हमें जितनी व्याकुलता होती है, उतनी ही यदि प्रभुके लिए हो तो हमारा काम बन जाय। हम यदि अपने प्रभुके लिए रोएँ तो हमारे आँसू सारी मलीनताको धोकर हृदय स्वच्छ कर दें और ऐसे स्वच्छ हृदयमें हमें अखंड शान्ति एवं परमानन्दकी अनुभूति होने लगे।

सारांश यह कि आत्मिक विकाश की ओर अग्रसर होना हमारे लिये परमावश्यक है, परन्तु यह तभी सम्भव है जब हम अपने मन को नियन्त्रित करके अपने परम लक्ष्य प्रभु को प्राप्त करने में सतत प्रयत्नशील रहें।

—:०:—

जो न होत जग जनम भरत को

—श्री रामप्रताप मिश्र—

मर्यादा पुरुषोत्तम रामके छोटे भाई भरत हमारे सम्मुख धर्मके ज्ञाता, नीतिज्ञ, त्यागी, संयमी, सदाचारी और प्रेम, विनय तथा श्रद्धा भक्तिकी साक्षात मूर्तिके रूपमें आते हैं। उनके जीवनमें वैराग्य, सत्य, तप, क्षमा, दया, वात्सल्य धैर्य, शान्ति, गम्भीरता, सरलता, क्षमता आदि सभी मानवोचित गुणोंका अनुपम सम्मिश्रण मिलता है। यदि यह कहा जाए कि रामायण के पात्रोंमें सबसे अधिक उज्ज्वल चरित्र भरतका है, तो अत्युक्ति न होगी।

भरत प्रारम्भसे अन्त तक भारतीय जनताके आंसुओंके प्रतीक हैं। तुलसीने उन्हें अपने जीवनकी समस्त करुणा एकत्र कर निर्मित किया है। लगता है कि भरतका जन्मही करुणाके लिए हुआ है। जैसे स्वर्णकी परख बिना अग्निके नहीं होती, या यों कहा जाए कि अग्निमें जानेसे पहले हम स्वर्णको स्वर्ण कहकर जानते ही नहीं, उसी प्रकार भरतके सत्य रूपके दर्शन तब होते हैं जब अयोध्या सूनीहो जाती है। भरत अयोध्याकी भयानकताको देखते हैं—

प्रविषत अवध भयानक देखा।

और उसी भयानकताकी छायामें भरतका रूप देदीप्यान होकर चमकना शुरू होता है।

भरत नानाके यहांसे आते हैं, नगर और राजभवनको शोक-संतप्त पाकर वह आश्चर्यमें पड़ जाते हैं। माता कैकेयी उनका स्वागत करती हैं, बलैया लेती हैं और उन्हें रामके बनवासकी बात बताती हैं। बनवासकी बात सुनकर एक बार तो भरतको अविश्वास-सा होता है, पर सारी बातोंको सोचकर उनका सन्देह मिट जाता है। भरत विचार करने लगते हैं कि कहीं रामसे कोई अपराध तो नहीं हो गया जो दंडस्वरूप उन्हें बनवास मिला। पर ऐसा नहीं हो सकता, रामसे कोई अपराधतो होनेकी सम्भावना नहीं। मातासे वह बनवासका कारण पूछते हैं। जब माता कहती हैं कि मैंने तुम्हारे लिए राजासे वरमें राज्य तथा रामके लिए बनवास मांगा है तब यह सुनकर भरत स्तम्भित रह जाते हैं। बाल्मीकिके शब्दोंमें भरत कहते हैं—

कि न कार्य हतस्येह मम राज्येन शोचतः।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्राता पितृ समेन च ॥

बा० रा० ७२–२

गोस्वामी तुलसीदासके शब्दोंमें—

पापिनि सबहिं भांति कुल नासा।
जो मन अरुचि रही अस तोही,
जनमत काहे न मारेसि मोही ॥
पेड़ काटि पल्लव तैं सींचा,
मीन जियन निति वारि उलीचा ॥

माताको उसके कृत्य पर धिक्कारते हुए कहते हैं—

कुलस्य त्वप्रभावाय कालरात्रिरिवागता।
अंगारमुपगुयत्वां पिता मे नाववद्धवान ॥
वा० रा० २-७२-४

इस प्रकार न जाने क्या-क्या माताको कह जाते हैं। माताके कृत्यसे उन्हें मर्मान्तक वेदना होती है और वह उसके कार्यको घोर पाप समझते हैं। यहां भरतके महान चरित्रका विशेष परिचय इस बातसे मिलता है कि वह पिताको जिनकी विशेष आज्ञासे राम वन गए हैं, कुछ भी नहीं कहते। यह धर्मपरायण भरतके निष्कलंक हृदयका एक अनूठा चित्र है।

भरत अपनेको रामपर न्योछावर कर चुके हैं। उन्हें रामकी गद्दी पर बैठनेमें अपार दुःख तथा रामके चरणोंमें लोटने या बैठनेमें परम सुख प्राप्त होता है। वह तो यह समझते रहे कि रामका राज्याभिषेक हो रहा है, इसलिए उन्हें बुलाया गया है। वह अपनेको राज्यका अधिकारी तो दूर, इसके योग्यही नहीं समझते हैं। जब भरतके आनेकी सूचना रनवासमें पहुँची तब कौशल्या और सुमित्रा भी रोती, कलपती वहां आती हैं। राम-बनवाससे व्याकुल कौशल्या की दयनीय स्थितिको देखकर भरतका कोमल हृदय व्याकुल हो उठता है। वह सोचते हैं कि माता कौशल्या के दुःखका कारण मैं ही हूँ और यह सोचतेही भरत मूर्छित होकर कौशल्याके चरणोंमें गिर पड़ते हैं। जब कुछ देर पश्चात चेतना आती है तो 'हा राम, हा राम' कह कर पागलोंकी भांति प्रलाप करने लगते हैं और माता कौशल्याको विश्वास दिलाने लगते हैं कि इस पापमें उनका कोई हाथ नहीं है—

जे अघ माता-पिता-सुत मारे।
गाई गोठ महि-सुर-पुर जारे॥
जे पातक उपपातक कहहीं।
करम-बचन मन भव कवि अहहीं॥
ते पातक मोहि होहि बिधाता।
जो यहु होइ मोर मत माता॥

यही नहीं—

तजि श्रुति पंथ बामपथ चलहीं।
बंचक बिरचि बेष जग छलहीं॥
तिन्हकै गति मोहि शंकर देऊ।
जननी जौ यहु जानउँ भेऊ॥

महर्षि बाल्मीकिने भरतके प्रायश्चित-स्वरूप कहे वाक्योंको लगभग ४० श्लोकोंमें बद्ध किया है, पर यहां एक श्लोक ही देखिए, कितना मर्मान्तक है —

प्रेक्ष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रति मेहतु
हन्तु पादेन गां सुप्तां यस्यार्यो नुमते गतः॥

हे माता, यदि मैं आर्यश्रेष्ठ रामके बनवास जानेके सम्बन्धमें कुछभी जानता होऊँ तो यह सब पातक मुझे लगें।

भरतकी इस दशाको देखकर कौशल्याके हृदय पर गहरी चोट लगती है। वह घबरा जाती हैं और भरतको अपनी गोदमें बैठाकर रोते हुए कहती हैं—

मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे॥१

दृष्टया न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः
वत्स सत्य प्रतिज्ञो मे सतां लोकनवाप्स्यसि ॥
वा० रा० २-७५-६१-६२

यह भरतकी रामके प्रति सबसे बड़ी परीक्षा है। यदि उनके हृदयमें रामके प्रति अनन्त प्रेम न होता, यदि उनके हृदयमें विशुद्ध धार्मिकता को छोड़कर किंचित मात्र भी किसी प्रकारकी गंध होती तो कौशल्याके हृदयको इतनी शीघ्रतासे अपनी सचाईमें खींच लेना उनके लिए सम्भव न हो पाता, और यही भरतके चरित्रकी सर्वोत्तम विजय है। जहां तक राज्य करनेकी बात है वह तो भरतको किसीभी प्रकार मान्य नहीं। वशिष्ठ आदि गुरुजनोंके कहने पर भरत जो कुछ कहते हैं वह वर्णनातीत है। रामकी राजगद्दी पर बैठना उनके लिए इतना बड़ा पाप दीखता है कि—

मोंहि राज हठि देइहहु जबहीं।
रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥

इसके पश्चात सब लोगोंकी बातोंका यथा-योग्य सम्मान करते हुए यह कहते हैं कि मेरे हृदयमें एक ही इच्छा है, वह यह कि—

एकहिं आंक इहै मन माहीं।
प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं ॥

यद्यपि मैं ही इन सब अनर्थोंका कारण हूँ, फिर भी मुझे विश्वास है कि परम कृपालु राम मुझे क्षमा करेंगे।

भरत माता, गुरु आदि विशिष्ट नगरवासियों सहित रामको लौटानेके लिए चल पड़ते हैं, मार्गमें गंगा-तट पर पहुँचनेसे पहले निषादको शंका होती है कि यह रामका द्रोही है। वह अपनी सारी सेनाको सजग कर देता है। पर जब उसे पता चला है कि भरत रामको लौटाने जा रहे हैं तब उसे बड़ा विषाद होता है और वह भरतको धन्य मानते हुए कहता है—

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगती तले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥
वा० रा० २-८५-१२

हे भरत तुम धन्यहो, तुम्हारे समान धर्मात्मा पृथ्वी पर दूसरा नहीं है जो बिना यत्नसे ही मिले राज्यको त्याग कर रहे हो।

भरद्वाज ऋषि भी भरतकी परीक्षा लेते हैं, पर भरतका अगाध प्रेम और दृढ़ विश्वास सबके सन्देह पर पानी फेरता चला जाता है। जब भरतकी सेना चित्रकूटके निकट पहुँचती है तब आकाशमें धूल उठती देखकर राम लक्ष्मण से कहते हैं—"भाई देखो क्या बात है।" लक्ष्मण बहुत ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर देखते हैं कि भरतकी सेना आ रही है। वह कह उठते हैं—"भरतको राज का मद चढ़ गया है, वह चाहता है कि रामको मारकर निष्कंटक राज करूँ।" किन्तु भरतकी दशा विचित्र ही है। वह कहते हैं—

यावन्न रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम्।
वैदेही वा महाभागं न मे शांतिर्भविष्यति ॥

भरतको धुन लगी है कि जबतक राम, लक्ष्मण, सीताको नहीं देख लूँगा तब तक शान्ति नहीं मिलेगी। जब वह चित्रकूट पर्वत पर पहुँच जाते हैं और राम-सखा उनके बैठने और चिन्तन-मननके स्थानोंको दिखाते हैं तब रामके पद-अंकोंको देखकर रामके मिलनेका अनुभव करने लगते हैं। गोस्वामी तुलसीदासके शब्दोंमें—

(शेष पृष्ठ ३१ पर देखिये)

सुरत बदल दो सुख चरणों में लोटेगा

श्री सत्यदेव

प्रत्येक प्राणी प्रायः सुख, समृद्धि, कल्याण, यश तथा सच्चे आनन्दका इच्छुक है। इन्हींके निमित्त दान, पुण्य, यज्ञ, हवन, कुआँ, बावली, ताल, धर्मशाला, गोशाला, तीर्थयात्रा, स्वाध्याय आदिका आदान-विधान किया कराया जाता है। इन्हींके पुष्ट्यार्थ वेद, पुराण, धर्म शास्त्रादि का निर्माण हुआ, इन्हींके हेतु देव पूजा, ब्रह्म स्तुति, ईश्वरोपासना, योग, समाधि, जप, तप आदि विशेष श्रम किये जाते हैं। इन्हींके प्राप्त्यार्थ स्कूल, कालिज, गुरुकुल, अनाथालय, समाज सुधार, देश सुधार, जाति सुधार, कुरीति निवारक आदि संस्थायें खोली जाती हैं। तात्पर्य यह कि संसारके उद्योग-धंधे सभी इन्हीं के सिद्धयार्थ हो रहे हैं। इन्हें क्योंकर प्राप्त करना चाहिये यही सबके मनमें लगी है। इससे कोई बचा नहीं। परन्तु इन सबकी जड़में मूलरूप से कार्य करनेवाले विचारों पर बहुत कम सज्जनों ने ध्यान दिया होगा। जिन्होंने ध्यान दिया वह तो अवश्य ही किसी न किसी समय अपने ध्येय तक पहुँच कर रहे, जिन्होंने इसपर दृष्टि नहीं दी वे ऊँचेसे ऊँचे उठकर भी खाली हाथ रहे, ऐसा लोकमें प्रत्यक्ष रूपसे देखा जाता है। आजकल कुछ विद्वान् इसे अनुभव तो करते हैं परन्तु इसके अनुसार करनेमें वे भी असमर्थसे प्रतीत होते हैं। विचार ही सब दुःख-सुखका मूल हैं, इसे कहनेवाले तो बहुत हैं यदि कहने वाले, इसके मानने वा करने वाले भी होते तो अपने मननसे किसी अच्छी स्थिति पर पहुँच जाते परन्तु ऐसा न करनेसे उन्होंने अपनी स्थिति बिगाड़ ली है।

आज आप जिसको देखिये वही दुःखी है, राजासे प्रजा तक, विद्वान्से मूर्ख तक, धनीसे निर्धन तक, बलीसे निर्बल तक, रूपवान्से अरूपी तक, छोटे-बड़े गृहस्थसे लेकर उच्चसे उच्च त्याग मूर्तितक सब दुःखकी बेड़ियोंमें जकड़े हुए मृत्युका मार्ग देख रहे हैं। यह क्यों! क्या किसीने इनके हाथ-पाँव तोड़ दिये हैं, राज छीन लिया है, जोरू बच्चे मार दिये हैं, विद्या छीन ली हैं अथवा आँखें फोड़ दी हैं, पुस्तकें छीन ली हैं, जप तप करनेसे रोक रखे हैं, किसीने वाग्शक्ति हर ली है? इनमेंसे एक भी कारण उपस्थित नहीं। खूब खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते, काम-काज करते, भोग-भोगते हुए राज करते हुए फल प्राप्तिकी शक्ति रखते हुए, सुन्दर होते हुए, धनवान्, सम्पत्तिवान्, श्रीमान्, बुद्धिमान् पुत्र पौत्रवान् ऊँचेसे ऊँचे घर, अच्छेसे अच्छे हाथी, घोड़े, बैल, मोटर साइकिल, तांगा, बग्घी, विद्यालय, गुरुकुल, कालिज मठ सिंहासन राजपाट गुरू, अध्यापक महंत, पुजारी जप, तप संध्या उपासना आदि आजादीसे करते हुए भी दुखी हैं। इन सबका एक ही कारण है केवल विचारोंकी अशुद्धता है। इसे निम्न उदाहरणमें समझिये—मनुष्यमें अनेक शक्तियाँ अनेक काम करनेको

हैं यह सत्य है, परन्तु एक काम करनेका अनुष्ठान करने पर अन्य शक्तियाँ उस एक शक्तिके जागृत होने पर उसका साथ देती हैं यह दूसरा नियम है। इसको ध्यानमें रखे विना कोई मनुष्य संसारमें सुखी नहीं हो सकता। जब एक शक्ति जाग गई तो दूसरी उसकी सहायक होगी और यह उस समय तक उसकी साथी बनी रहेगी जब तक विचार की धाराको बदलने वाला स्वयं उसको न बदले।

उदाहरण—जैसे भूखा अन्न न होनेके कारण अन्न नहीं इसको अनुभव करने वाली एक शक्तिको जगाता है तथा उसके जागृत होने पर मनुष्यकी अन्य शक्तियाँ उसकी सहायक बन गईं। अब अन्न नहींका अनुभव करने वाली सुरत अपनी सहायक शक्तियोंसे बल पाकर बलवती हुई। इधर इस सुरतको जगानेवाले ने अन्न नहीं, अन्न नहींकी रट लगाई। नहीं की सुरत बेगवती होकर दौड़ी। उसने अपनी सहायक शक्तियोंकी सहायतासे नहीं को उसकी सीमातक पहुँचा दिया। इस समय यद्यपि मनुष्यमें अन्य बहुत-सी शक्तियाँ हैं परन्तु इस समय वे सब नहींकी साथी होनेसे अपना निजका स्वाभाविक रूप नहीं रखती। अतः ऐसी स्थिति पर पहुँच कर नहींकी सुरतने भयंकर रूप धारण कर लिया। अब इस सुरतका स्वामी यदि इसको बदलता नहीं। तो यह नहीं वाली सुरत बढ़ती जायगी। ऐसी अवस्थामें नहींकी सुरत वाला दुःखित ही रहेगा। अब यदि आप उसे अच्छेसे अच्छे पदार्थ खिलाते रहें तबभी वह दुःखी ही है। क्योंकि उसने अपनी नहीं वाली सुरतको बदला नहीं और यदि वह नहीं वाली सुरतको उद्योग वाली सुरतसे बदल देवें तो सचमुच भूखा होने पर भी दुःखी न होगा। जैसे मास भर तक सेवा करने वालेके घरमें आज खानेको नहीं, वह अपने स्वामीसे वेतन माँगता है, उसे उत्तर मिलता है चार रोज बाद पैसा मिलेगा, यद्यपि उसे आजही चाहिये परन्तु वह यह जानकर कि आज खानेको नहीं पर चार दिन बाद मिलेगा। अतः वह दुःखी नहीं। परन्तु एक भिक्षुक बारातोंमें अच्छेसे अच्छे पदार्थ पाते हुए भी दुःखी है। क्योंकि कल फिर मिलनेका कोई निश्चय नहीं है। इसी प्रकार एक ईश्वर विश्वासी, व्रतधारी, सन्तोषी, प्रभु भक्त कई कई रोज खानेको न पाते हुए भी सुखी हैं इनके विपरीत असन्तोषी, अश्रद्धालु, कंजूस, भिखारी लोभी आदि खूब खाकर भी दुःखी हैं यह केवल सुरत बदलनेका प्रभाव है, जो इस नियमसे जीवन व्यतीत करते हैं वे दुःख आने परभी सुखी हैं और जो इस नियम पर नहीं चलते वे सुखी होते हुए भी दुःखी हैं।

आत्म विश्लेषण करनेका सबसे सही तरीका यह है कि हम एकान्तमें बैठकर, जिन कार्योंको करते हैं, उन्हें सोचें और अपने आपसे पूछें कि इनमें कौन काम गलत या सही है। आपकी आत्मा परिस्थिति, देश, अवस्था इत्यादिका ध्यान रखकर आपको वर्तमान कर्तव्यका वास्तविक ज्ञान करायेगी।

स्वर्ग के सात सोपान

शिवराम कृष्ण शर्मा

⊙

१—जिस मनुष्यके पास १०) रु० है वह हजार वालेको न देखे। उसके विपरीत जिसके पास कुछ नहीं उसपर दृष्टि देकर अपनेको धनी जाने और प्रभुका धन्यवाद करे कि मैं लाखों करोड़ों अरबों मनुष्योंसे अच्छा हूँ। इसी प्रकार फूसकी झोपड़ी वाला पक्के मकान वालेको न देखकर, बाजारोंमें नंगे सोने वालोंको देखे। देशी जूतोंका पहनने वाला बूट वालोंको न देखे—बिना जूते वाला बिना पांवके मनुष्योंकी ओर देखे और स्वयं प्रभुका धन्यवाद करे उनसे प्रीति रक्खे।

२—इसी प्रकार बली अबलीको देखे, सुन्दर कुरूपको, विद्वान् मूर्खको, धनी निर्धनको, परमात्माकी शक्तियोंका धन्यवाद करे और छोटोंसे हार्दिक प्रेम करे।

३—अपनेको उन्नत करनेके विचारसे यदि सुन्दर है तो प्रभुको सुन्दरताका केन्द्र माने, धनी है तो प्रभुको निधि माने, बली है तो प्रभुको बलवान, विद्वान् है तो प्रभुको सर्वज्ञाता जाने, इसी प्रकार योगी, यती, गुरु आदि प्रभुकी ओर देखें इससे उन्हें अभिमान न होगा शान्ति बनी रहेगी।

४—किसीका अवगुण न देखे जहाँ तक हो सके गुणही देखे इससे अपना लाभ प्रभुसे प्रेम होगा, यदि कोई उसमें अवगुण दिखावे तो उन्हें उपदेश भावसे गुण दिखावे। जैसे बहुधा लोग राम कृष्णमें दोष लगाते हैं, हमें उन अवगुणोंको गुण दृष्टिसे देखना-दिखाना चाहिये, इससे हमारा प्यार, जातिका गौरव, सुनने वालेका कल्याण होगा तथा मर्यादा पुरुषोंका सम्मान स्थित रहेगा। जैसे कृष्ण या गोपियोंका भाव, कुछ लोग बिना विचारे इसे दोषसे देखते हैं, हम कृष्णसे आत्मा, गंगासे ज्ञान गंगा, गोपियों से इन्द्रिय, कदम्ब वृक्षसे भृकुटि, चीरसे इन्द्रियोंके विषय लेते हैं। इससे हमारी तथा कृष्ण दोनोंकी भलाई सिद्ध होगी विपरीत भावसे निन्दा होगी जो दोनोंके पक्षमें हानिकर है।

५—सदा उत्साह युक्त भावोंकी वृद्धि करनी चाहिये भय तथा कायरताके भावोंको दूर करना चाहिये, जैसे किसीका घर शहरके किनारे पर है मकान कच्चा तथा दीवारें छोटी छोटी हैं। उनसे चोर आनेकी सम्भावना है इस सम्भावनाको अनुभव करके, चोरके भयसे घर छोड़नेका विचार न आने देना चाहिए। इसके विपरीत छोटी २ दीवारोंको ऊँचा बनानेका यत्न करना चाहिये ताकि इसे फाँदकर न आ सकें। यदि उस परभी न माने तो और ऊँचा करें यहाँ तक कि चोरको उसके फाँदनेका साहस न रहे। इस प्रकारके भावोंसे मनुष्य सदा उन्नत होता रहता है।

जो न होत जग जनम भरत को

(पृष्ठ २७ कालम २ का शेष)

हरषहिं निरखि राम पद अंका।
मानहुँ पारसु पायेऊ रंका॥
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं।
रघुबर मिलन ससिसुख पावहिं॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे।
सहज सनेह सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरतको।
अवर सवर चर अचर करतको॥

जिस भरत पर लक्ष्मण इतना सन्देह कर रहे हैं वही भरत जब रामके सामने पहुँचते हैं तब उनकी दशाका वर्णन बाल्मीकिके शब्दोंमें सुनिए—

जटिलं चीर बसनं प्राजति पतितं भुवि।
ददर्श रामो दुर्दर्श युगान्ते भास्कर यथा॥
बा० रा० २-१-२-१००-१

इसीको गोस्वामी तुलसीदासने कितना सुन्दर कहा है—

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई।
भूतल परे लकुट की नाई॥

जटा वल्कल धारण किए हुए, पर्यश्रुनयन, गदगदकंठ, क्षीणदेह, दीन-मलीन, दुःखसे व्याकुल एक अपराधीके समान हाथ जोड़े, कांपते हुए भरत रामके पास पहुँचते ही मूर्छित हो रामके चरणोंमें गिर जाते हैं। उस समय उनके कण्ठसे 'हा आर्य' के अतिरिक्त कुछ नहीं निकलता। श्रीराम दौड़कर भरतको उठा लेते हैं और अपनी गोदमें बैठा लेते हैं। भरत हर प्रकारसे रामको लौटानेका यत्न करते हैं, पर राम भरतकी प्रार्थना स्वीकार कर अपनी चरणपादुका भरतको दे देते हैं। उन्हींको लेकर भरत लौट आते हैं और रामके लौटने तक उन्हीं पादुकाओंको राजसिंहासन पर रखकर अपने को रामका प्रतिनिधि मानकर १४ वर्ष विता देते हैं। धन्य हैं भरत और धन्य है उनकी भ्रात-भक्ति। साथ ही धन्य हैं राम, जिन्हें भरत जैसा भाई मिला। परम भक्त तुलसीदासके शब्दोंमें—

जो न होत जग जनम भरतको,
सकल धरम-धुरि-धरनि धरतको॥

६—यदि कोई किसीसे बुराई करे तो उसके साथ भलाई करे। किसीने भलाई करने वालेसे पूछा—कि आप अपने बुराई करने वालेके साथ सदा भलाई करते हैं आखिर यह कब तक करेंगे? उसने उत्तर दिया—'जब तक वह बुराई करता रहे।' उसने कहा—'यदि वह अपनी बुराईसे बाज न आवें तो आप कब तक उसके संग भलाई करते रहेंगे?' उसने कहा—यदि वह बुराई करते नहीं थकता तो मैं भलाई करते क्यों थकूँगा।' मात्र यह कि जब बुराई करने वाला, अपनी बुराईको नहीं छोड़ता तो भलाई वालेको अपनी भलाई न छोड़ना चाहिये। इससे भलाई वालेका अधिक कल्याण है यह ध्यानमें रखना चाहिये।

७—कठिन कामोंको सदा करना चाहिये। उसके करनेसे मनको गिराना न चाहिये। उनकी पूर्तिमें विशेष प्रयत्नशील होना चाहिये। इससे मनुष्य बड़ीसे बड़ी आपत्तियोंको आसानीसे पार कर सकता है।

सोऽहम् बोल

सोऽहम् बोल, सोऽहम् बोल। तेरा क्या लगता है मोल ॥
क्या करता जीवनकी आशा। जैसे जलमें पड़ा बतासा ॥
पलमें तोला पलमें माशा। प्यारे तोल सके तो तोल ॥
सोऽहम् बोल शिवोहम् बोल ॥

जिसने आकर जन्म लिया है। उसने एक दिन कूच किया है ॥
किसने किसका साथ दिया है। यह जगका ढंग देख लिया है ॥
सतको तमने घेर लिया है। अब तो अन्दरके पट खोल ॥
सोऽहम् बोल, शिवोहम् बोल ॥

जब यम फाँस गलेमें डारे। सुत पितु मातु न कोई उबारे ॥
घरसे बाहर तुरत निकारे। स्वारथके वश फिरते सारे ॥
प्यारा तन अग्निमें जारे। तादिन खुले प्रेमकी पोल ॥
सोऽहम् बोल, शिवोहम् बोल ॥

जब इस जगमें आना-जाना। सबको ज्ञान धर्म सिखलाना ॥
गुरु-भक्तिका पाठ पढ़ाना। हरदम सद्गुरुके गुण गाना ॥
द्वन्द रहित हो एक हो जाना। बस यह जीवन है अनमोल ॥
सोऽहम् बोल, शिवोहम् बोल ॥

संग्रहकर्ता :—श्री गिरधरदासजी

जगदम्बाके विविधरूप और वाहन

ले०—बनारसी लाल, अध्यक्ष अभिमन्यु पुस्तकालय, काशी

(गतांक से आगे)

शवा रूढ़ां महा भीमां घोरदंष्ट्रां वर प्रदाम ।
हास्य युक्तां त्रिनेत्रां च कपाल कर्त्त्रिका कराम् ॥
मुक्तकेशी लाल जिह्वां पिवन्तीं रुधिरं मुहुः ।
चतुर्बाहु युतां देवीं वरा भय करां स्मरेत् ॥

काली शिव की शक्ति हैं । जिसे शिवा कहा जाता है । जब परब्रह्म सृष्टि का संहार करता है तो उसका शिव रूप इस कार्य का सम्पादन करता है । सम्पादन में जिस महा-शक्ति का सहारा लिया जाता है, वही शिवा शक्ति हैं । अपनी इस शक्ति से जब शिव पृथक रहता है तो उससे किसी भी प्रकार के कार्य नहीं होते हैं । इस रूपको तान्त्रिक कल्पना के अनुसार शिव "शव" की संज्ञा प्राप्त होती है

काली, शिवा तारा, इत्यादि पौराणिक नाम पर्याय हैं । काल का रूप कराल, भयवर्द्धक, संहारक एवं श्याम (काला) है । जीव में व्याप्त अज्ञानान्धकार को नाश हेतु वेद में इसका प्रसंग है । अज्ञान को तिमिर, अन्धकार आदि रात्रिके प्रकारान्तमें कहा गया है । अमर कोषमें रात्रिके १२ नाम आये हैं । शर्वरी, निशा निशीथिनी, रात्रि त्रियामा, क्षणदा, क्षपा, विभावरी, तमस्विनी, रजनी, यामिनी, और तमी । वेद में काल के स्त्रीलिंग वाचक प्रभेद में इन १२ नामों को प्रकारान्त रूप में लाया गया है । हम ऊपर कह आये है कि काली और शिवा तथा तारा पृथक-पृथक होती हुई भी एक रूप है ।

काली पराशक्ति अथवा आदि शक्ति रूप हैं । इनसे शिवा तथा 'तारा' का प्रादुर्भाव हुआ । इसी प्रकार काल से काली का प्रादुर्भाव माना गया है ! अब काल क्या है ? इसे समझना आवश्यक है । 'कलनात् सर्वभूतानाम्' जो सबका कलन अर्थात् नाश करे, उसका नाम काल है । वेदों के अनुसार काली का प्रादुर्भाव जिस प्रकार काल से हुआ माना गया है उसी प्रकार काल की भी उत्पत्ति आकाश तत्व से हुई है ।

काल नित्य पदार्थ है । नित्य से ही नित्य की उत्पत्ति सम्भव है । आकाश तत्व नित्य है ।

इस काल और काली की जब पौराणिक कल्पना की गई तो महाकाल का साधारण जीव का हरण करने के कर्म में 'यमराज' की कल्पना की गई । महाकाली यानी शक्ति की कल्पना तारा के रूप में की गई । यमराज फाँसी का फन्दा और

दण्ड धारण करता है, और "तारा" उस फन्दा को काटने के लिए अर्थात् यम कष्ट निवारण एवं जीव को मुक्त करने के अभिप्राय से हाथ में कैंची धारण करती है। इसी के साथ खप्पड़ भी दिखाया गया है। अपनी माया द्वारा वशीभूत करने के लिये मदिरा रूपी तत्व को खप्पड़ में धारण करवाया गया है। वाममार्ग में इसका विधान व्यापक रूप से है। यह भी अवैदिक है। इसी आधार पर पंच मकार का प्रयोग तंत्र शास्त्र में चला जिसके उपासक वाममार्गी कहलाये।

काली का वाहन

काली के विभिन्न वाहन रूप, तत्व एवं गुण के अनुसार पुराणों में क्रमशः गदहा, शव और सिंह बतलाया गया है, और कहीं-कहीं पर बिना वाहन का भी रूप प्राप्त होता है। इसका मुख्य कारण साधक की साधना एवं कल्पना तथा कामना है। परन्तु इसके पीछे पौराणिक तत्व भी सन्निहित है। जिस समय शक्ति वरद रूप धारण करती हैं उस समय उनका कोई वाहन नहीं होता। 'तारा' के हाथ में कमल जो नील वर्ण का दिखलाया गया है इसका उद्देश्य है निर्लेपत्व है।

वैदिक एवं पौराणिक दृष्टिसे कालीको शवारूढ़, गर्दभारूढ़ एवं सिंहारूढ़ इन रूपोंके अतिरिक्त कहीं-कहीं बिना वाहनका भी ध्यान किया जाता है। शव वाहन उनका उस समय का है जब कि उनके द्वारा नाश एवं संहारको प्राप्त समग्र संसार महाश्मशान रूप में उपस्थित होता है और चतुर्दिक शव ही शव दिखायी देता है। उस समय काली का एक मात्र वाहन 'शव' काल का दूत श्वान, जो शवके माँसके तरफ लोलुप दृष्टि रखे दिखाया जाता है।

तात्पर्य यह कि पौराणिक कल्पना तथा साधकों के भिन्न-भिन्न भावों एवं विचारों के आधार शव, और सिंह हैं।

यहाँ श्मशानका भाव उस स्थानकी कल्पना है। भक्तोंका हृदय है जो वीरान और उजाड़ हो चुका है। अर्थात् माया मोहसे रहित जहाँ उनका अहंकार और मायाकी भावनायें जलकर भस्म हो चुकी हैं।

तारा काली

काली का एक दूसरा रूप "तारा" का है तारा ही प्रकारान्त में छिन्नमस्ता और बंगला है। परन्तु स्वरूप भेद एवं साधना भेदके कारण पुराणोंमें इन्हें अलग-अलग माना है।

मायासे ग्रसित कालसे भय ग्रस्त जीव जब भगवती की कृपा एवं अनुकम्पा का पात्र बनता है तो काल-बन्धनको काटनेके लिये कैंची और मायामें फसाये रखनेके लिये मोह रूपी मदिरा-पात्र, तीसरे हाथमें खड़ग (जो काली रूपसे लिया गया है) चौथे हाथमें कमल (आकाश तत्व का प्रतीक है) लिये दिखलाया गया है। अनन्तः तारा परा शक्ति, त्रिगुणात्मिका शक्तिका प्रतीक है जिनका पुराणोंमें विशेष विवेचन किया है।

—:०:—
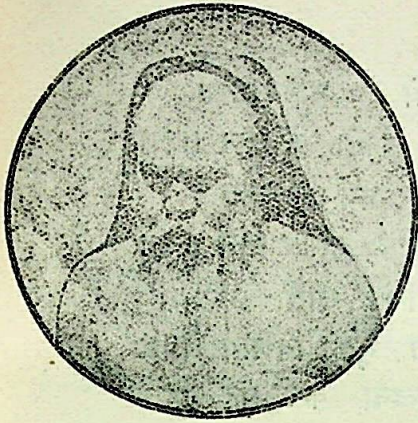
शारदाराम शब्दावली

शारदारामीय भागवतकिरणके नवम प्रकरणसे उधृत

ॐ नमो नारायण ब्रह्म ॐकारा ।
जेहि सुमिरत पुंज पाप नसावै, जन्म, मरन, दुःख भये क्षारा ॥
सर्व व्यापो सबहि संग बोलत, अजरज अस है निरंकारा ॥
डोलत बोलत खात खवात, यह रहस्य अपरम्पारा ॥
गूढ़ तत्व सुजन जन जानत, निकसा सो भव पारा ॥
जो जड़ वर्ग को नित प्रकाशो, शारदाराम सोई ॐकारा ॥

* * * *

भागो भागो दुराशा त्यागो, ॐ शरणी मन लागो ॥
आस दुरासमें फँसकर झगरत, दिन जात है सारो ॥
यह दुरासा दुस्तर फाँसी, निकसत कोउ ॐ प्यारो ॥
दुरासा पिशाचिन झपटि झकोरे, व्याकुल प्राण सहारो ॥
यह दुनियाँ दुस्तर दरसति, अचरज अपर अपारो ॥
सत संतोष उदय भया जबहिं, तब अज्ञान अँधेरा हारो ॥
शारदाराम शरण ॐ कारा, ॐकार लगावत पारो ॥

* * * *

हरि ॐ जू अन्त में है रखवाला ।
क्षमा विवेक शीलहु देत है, सत संतोष पहिरावत माला ॥
धृति कीर्ति वैराग बढ़ावत, भक्तन उर पैठ करत सँभाला ॥
विचार समता नितहिं उपजावै, सम, दम आरजू हृदय निहाला ॥
जीवन मरण सबहिं सहायक, ऐसो ॐ जू सदहि दयाला ॥
शारदाराम रामहि हृदय बसिया, ॐ जू किया निहाला ॥

* * * *

सद्गुरु संदेश

तेहि ईश्वर सर्वज्ञ को, वन्दौ बारम्बार ।
शारदाराम वन्दि गये, जो जग भये अवतार ॥१॥
व चितवो दिन रात को, व का अर्थ वियन्त ।
शारदाराम यह कह चलो, कोऊ-कोऊ जानत सन्त ॥२॥
ईश्वर वन्दन अहंकार जीतै, ज्यों शिव जीतै काम ।
संसय नाशै कैलाश मिलावै, ज्ञानी भुक्त विश्राम ॥३॥
सर्व इच्छा पूरवै ब्रह्म, ईश्वर वन्दना कर पूर ।
शारदाराम जो नित बन्दै, वेद कहै सोइ सूर ॥४॥
तीन लोक के देवता, परमेश्वर उर धार ।
शारदाराम वन्दना में, तिसका नाम पुकार ॥५॥
लख चौरासी उतपत में, सुर दुर्लभ देह आह ।
जे नर परमेश्वर ना भजे, सो भूत प्रेत है ताह ॥६॥
दर्शन को नर देह है, परवेसन को पिशाच ।
शारदाराम परमेश्वर बिन, श्रुति कहै यह साच ॥७॥
परम परमेश्वर वन्दना से, सुधरे मन का रंग ।
अनहद रंग सुख आनन्द है, परखै गुरु के संग ॥८॥
परमेश्वर वन्दना स्थिर भये, मंगल साज अमंगल नाश ।
शारदाराम फल सो लहे, जा को गुरु चरण विश्वास ॥९॥
परमात्मा वंदना बन्दो, जो रहत जीव के साथ ।
वृक्ष रूप से तन कहा, श्रुति कहा प्रभु नाथ ॥१०॥
परमात्मा बन्दना कहो, चालिस गुण के माह ।
तन मन अन्दर जो राखै, सोई एक समाह ॥११॥
परमात्मा वन्दन सुरत किया, उतरा भव जल पार ।
कर गहि प्रभु निकासियो, पड़ा रहा मझधार ॥१२॥
दीन दर्द के नाश को, अहै तुम्हारो नाम ।
परमात्मा बन्दन करि, शारदाराम लह विश्राम ॥१३॥
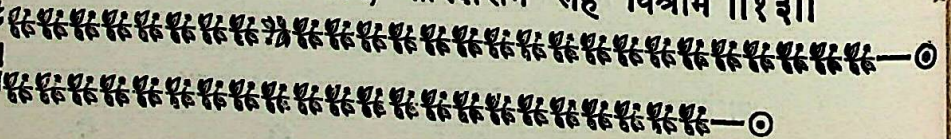
बाबाजीका बनज व्यापार

ले०—हजारीलाल लालचन्द 'सलुजे'

दिनांक १७. २. ५७

रविवार, दोपहर को एक बजे। आज जब मैं श्री रामटेकड़ी गुरुदेव बाबाजीके दर्शनको पहुँचा तो मेरे साथ मेजर जी०एस० सांगा अपनी धर्मपत्नीके साथ बाबाजीके दर्शनको आये। हम सबने बाबाजीके दर्शन किए। और भी नेमी-प्रेमियोंकी बहुत भीड़ हो गई। मेजर साहबने हाथ जोड़ कर बाबाजीसे प्रश्न किया—"बाबा जी, सब कहते हैं कि मानुष जन्म बड़े भाग्यसे मिलता है। अभी जो दिन-ब-दिन जनसंख्या बढ़ती जा रही है, इसका मतलब क्या समझना चाहिए कि दुनियाँ में पुण्य ज्यादा है? क्या इसी कारण दुनियाँ ज्यादा बढ़ती जा रही है?" बाबाजी बोले—"ऐसा नहीं समझना चाहिए। पहिलेके हिसाबसे देखा जाए तो जनता कुछ भी नहीं। चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्य ही सबसे कम हैं। महाभारतमें देखिए कौरवों-पाण्डवोंके युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेना कौरवोंकी और बारह अक्षौहिणी सेना पाण्डवों की थी। इतनी संख्या केवल युयुत्सु क्षत्रियोंकी थी अन्य वर्ण इससे अलग हैं। राम-रावणके युद्धमें चार पदम् जनता सिर्फ बाजा बजाने वाली थी। बाकी तो अलग थे। अब आपही हिसाब लगावें कि पहलेके हिसाबसे जनता किधर बढ़ी है।" मेजर साहबने कहा—"ठीक है महाराज, मगर कुछ जनता ऐसा भी कहती है कि ऐसे ही दुनियाँ बढ़ती गई तो खानेकी मुश्किल पड़ जाएगी।" बाबाजी बोले—"जो लोग ऐसा कहते हैं। उनका भगवत् विचार नहीं। उनको भगवान् पर विश्वास नहीं है। गीतामें भगवान कहते हैं—"भर्ता-भोक्ता महेश्वरः।" भगवान कहते हैं मैं ही खाने वाला हूँ, मैं ही देने वाला हूँ। एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त देखिए—बच्चा होते ही माताको दूध आ जाता है। पहले क्यों नहीं आता। जिसका जन्म होता है उसके लिए खाना पहले भगवान भेज देते हैं। एक बात और भी है। जैसी चीज कोई सेवन करता है वैसा ही उसका स्वभाव बन जाता है। जिस चीजमें ज्यादा मन लगता है उसीकी सत्ता मान बैठता है। संसारी मायाका सबको नशा चढ़ा हुआ है। जो संसारसे ज्यादा मोह करता है उसको संसारकी मायाका नशा रहता है, उसे और कुछ दीखता ही नहीं।" इतना सुनके मेजर साहब बोले—"ठीक है महाराज।" बाबाजीने कहा—"और कुछ पूछो।" मेजर साहब हाथ जोड़ कर हँसते हुए बोले—"हाँ और एक प्रार्थना है। मेरी बदली होने वाली है। दो जगह खाली हैं—एक मेरठमें, एक काश्मीरमें। अगर मेरठमें हो जाए तो ठीक

है।" बाबाजी बोले—"जिथे दाना तिथे खाना नानक सचे येहे" कोशिश करते रहो मेरठके लिए, परमात्मा कृपा करेंगे तो मन्जूर हो जाएगी।" मेजर साहब ने कहा—"बाबाजी, इच्छा तो आपके चरणोंमें रहने की थी।" इस पर बाबाजीने कहा—

"जल में बसे कुमुदिनी, चन्दा बसे आकाश।
जो जाही का प्रेम है, सो ताही के पास॥

अगर मन में प्रेम है तो सब कुछ है सच्चे प्रेमी को अन्तःकरण में ही दर्शन हुआ करते हैं।" मेजर साहब ने कहा—"आपकी कृपा चाहिए" बाबा जी बोले—"साधका संग न विरथा जावे। जो इच्छै सोई फल पावे"॥ जैसे माता-पिता चाहते हैं कि हमारे बच्चे सुखी रहें ऐसे ही संत भी यही चाहते हैं कि हमारे सभी भक्त सुखी रहें। जिधर आप जाएंगे उधर भी आप को बहुत संत मिलेंगे।" मेजर साहब ने कहा—हमारे पिता जी बोलते थे—मैं बड़ी दुनियाँ घूमा हूँ ऐसे संतो का दर्शन नहीं हुआ जैसे रामटेकड़ी वाले संत हैं। आपका दर्शन करके मेरा मन बहुत प्रसन्न होता है। उधर आप जैसे संत महात्मा कहाँ मिलेंगे।" बाबाजी बोले—"एक बड़ा अच्छा दृष्टांत आपको सुनाते हैं—एक राजा ने अपने मंत्री से कहा—'हंसके दर्शन कैसे होंगे?' मंत्री जी बोले—'आप ऐसा करें, सामने वाले मैदान में चिड़ियोंके लिये नित्य दाना डलवाएँ। हंस के आप ही दर्शन हो जाएँगे।' राजा के हुक्मसे रोज चिड़ियोंको दाना मिलना शुरू हो गया। दाना खाने वाली चिड़ियोंकी संख्या प्रति दिन बढ़ती गई। जिस किस्मके पक्षी आवें, उन्हें उसी किस्मका खाद्य पदार्थ मिल जाता था। जो-जो पक्षी दाना खाकर जावें, आगे जाकर दूसरोंसे बोलते रहें कि अमुक राजाके यहाँ खूब दाना मिलता है। ऐसा होते-होते मानसरोवर तक हंसोको भी खबर हो गई कि अमुक जगह पर एक राजा बड़ा दानी है, जैसी चिड़िया हो वैसा दाना उसे मिलता है। दो हंस भी मानसरोवर से उड़े और वहाँ आ पहुँचे जहाँ चिड़िया दाना चुगती थीं। दैवयोग से राजा और मन्त्री भी उस जगह आ पहुँचे। मन्त्री ने कहा—"वह देखिये महाराज, दो हंस आ गए, दर्शन कीजिए और लाइए इनका दाना।" हंस मोती और दूध खाते हैं। उनके लिये मोती और दूध आ गया। हंसोंने बड़े प्रेमसे मोतीका दाना खाया, दूध पिया और प्रसन्न होकर दो लाल देकर चले गये। ऐसे ही, अगर सच्चे साधु सन्तों के दर्शन करने की इच्छा हो तो साधु भेष मात्र की सेवा करनी चाहिये, ऐसा करने से संसार में यश बढ़ता है और कभी सच्चे संत भी आप ही आ जाते हैं, और सेवा रूपी दाना मिलने पर ज्ञान-वैराग रूपी लाल दे जाते हैं।" मेजर साहब ने हाथ जोड़कर बाबाजीको नमस्कार किया और कहा—"आपकी कृपासे सब कुछ हो सकता।" मेजर साहबकी धर्म पत्नी ने बाबाजीसे कहा—"आपने माताजी को वभूति दी थी, अब माता जी अच्छी हैं।" बाबा जी ने एक और पुड़ी वभूतिकी दी, प्रसाद और शुभाशीर्वाद दिया। दोनों दम्पति

चरणों पर माथा टेककर प्रसन्नता पूर्वक चले गये। इसके बाद बाबाजी ने सामने देखा तो एक भक्त बहुत देरसे सर झुकाये हुये, आँखोंमें आँसू भरे धरती पर मस्तक रखे बैठा था। दास की तरफ इशारा करते हुये बाबा जी बोले—"लो इसे प्रसाद दो और कहो कि एकदम तालाब नहीं भरता, थोड़ा-थोड़ा जल बरसनेसे तालाब भर जाता है।" दासने उसे प्रसाद दिया और जैसी आज्ञा मिली थी वैसा कहा। उसके मनमें क्या था वह जाने या बाबाजी जाने, बात बन्दकी बन्द रही। बाबाजीने कहा और भक्तने समझा। वह तुरत बाबा जीको नमस्कार कर चला गया। अब दास ने हाथ जोड़कर कहा—"बाबा जी गुरु ग्रंथ साहब में गुरु नानक जी ने क्या है जो नहीं लिखा! ढूँढ़ने वाले को उसमें सब कुछ मिलता है, पर हमलोग उस पर अमल नहीं करते सिर्फ पढ़ते ही जाते हैं।" बाबा जी हँसे और बोले—"सुनो एक दृष्टांत तुमको सुनाते हैं--काबुल में लोग घोड़े पालते हैं। एक बड़ी भारी दिवार का कोट बनाते हैं। उसमें घोड़ों के बच्चे छोड़ दिया करते हैं और उसके अन्दर कोई आदमी नहीं जाता। बारह से ही उनको खाने-पीनेका सामान किसी तरह से पहुँचाया जाता है। जब घोड़े तैयार हो जाते हैं तो उनकी परीक्षा लेने के लिये दीवार के बाहर चार खड्डे, जिसे खाई भी कहते हैं, खोद दिये जाते हैं और आवाज करने के लिये एक तोप छोड़ते हैं। तोपकी आवाज सुनते ही घोड़े बाहर जाने के लिये छलांग मारते हैं। जो ज्यादा ताकत वाला घोड़ा रहता है वह छलांग मारकर चारों खड्डों में से बाहर निकल जाता है। जो कम ताकत वाले रहते हैं वे उनके पीछे-पीछे गिरते चले जाते हैं। जो घोड़े सबसे कमजोर रहते हैं वे दीवारके अन्दर ही घूमते रहते हैं। ऐसे ही मनुष्यको समझना चाहिये यह संसार रूपी दीवारका कोट है। खड्डखाई रूपी अपने-अपने सम्प्रदाय का अहंकार है" वेदान्त रूपी तोपका संत आवाज करते हैं, समझाते हैं। घोड़े रूपी मुक्ति चाहने वाले पुरुष जब सन्तों द्वारा वेदान्त रूपी तोपकी आवाज सुनते हैं तो उस समय मुक्ति चाहने वाले मुमुक्षु पुरुषोंकी परीक्षा होती है। जो सच्चे मुमुक्षु लोग हैं वे सारे संसारके बन्धन तोड़कर आश्रम-वर्णका जो अभिमान है उससे भी पार चले जाते हैं। जो मुमुक्षु पुरुष बुद्धि विवेक, ज्ञान, वैरागमें कमजोर हैं' वे वर्ण आश्रम रूपी खड्ड-खाईमें फँस जाते हैं। मतलब यह है कि नाशवान वर्णके अभिमानमें आत्मज्ञान खो बैठते हैं। अथवा बुद्धि मलीन होनेसे ग्रन्थों का जो सत् विवेक है उसका पक्षपातसे निर्णय नहीं कर पाते।" इतना कहते हुए बाबाजी बोले--"जाओ हजारी लाल इतना समझ लोगे तो भी बहुत है।" दासने बाबाजीके चरणों पर माथा टेका, प्रसाद लिया और मन ही मन मगन होता हुआ घरको चला गया।

—:०:—

वैशाख मासके पर्वोत्सव

ले०—विद्याभास्कर पं० श्री सरयूप्रसादशास्त्री द्विजेन्द्र

○

यों तो गंगा स्नानका महत्व बारहो मास का माना गया है, पर कार्तिक मास और वैशाख मासके गंगास्नानकी विशेष महिमा और विधि शास्त्रोंमें मिलती है। चैत्री पूर्णिमासे वैशाखी पूर्णिमा तक ३१ दिनका यह एक विशेष गंगा स्नानका विधान है। जहाँ गंगा न हों वहाँ भी सूर्योदयसे पूर्व किसी भी तीर्थ-स्थान, तालाब नदी या कूप बावड़ी-सरोवर अथवा अपने घर पर ही शुद्ध जलसे स्नान करे। 'ॐ नमो भगवते वासुदेव' अथवा 'हरे राम—मन्त्रका यथाशक्ति जप एवं कीर्तन करके एक भुक्त व्रत करनेसे सभी प्रकारके पातक पुंज नष्ट होते हैं और संसारमें निर्मल यश एवं आयुकी वृद्धि होती है।

(१) संकष्ट ४र्थी व्रत—वैशाख कृष्ण ३ मंगलवार (४–४–६१) को यह व्रत है।

(२) शीतलाष्टमी—वैशाख कृष्ण ८ शनिवार (८-४-६१) को यह व्रत पड़ा है। उस दिन शीतला देवीका दर्शन एवं पूजन किया जाता है। वसन्त ऋतुमें प्रायः शीतलाका प्रकोप देखा जाता है। उसीकी शान्तिके लिए व्रत-विधान है। उसी दिन शुक्रास्त भी पश्चिममें होगा।

(३) वरुथिनी ११ एकादशी—वैशाख कृष्ण ११ मंगलवार (११-४-६१) को यह व्रत है। इसके बाद दिनांक १२ अप्रैल बुधवार को प्रदोष व्रत और गुरुवारको शिव-रात्रि व्रत है।

(४) मेष संक्रान्ति एवं शुक्रादय—वैशाख कृष्ण १३ गुरुवार (१३-४-६१) को सूर्य संक्रान्तिका पर्व है। अतः दिनमें ११ से ७ बजे तक स्नान-दानका पुण्यकाल है। हरि-द्वार तथा काशीके अस्सी संग्राम घाटपर स्नान का विशेष फल है। इस संक्रान्ति पर्वपर संयुक्तदान एवं जलपूर्ण घाट तथा पंखे आदि-नेम दानका अधिक महत्व है। उसके बाद १४ शुक्रवार दिनांक १४ को ही पूर्व दिशामें शुक्रोदय होगा।

(५) अक्षय ३ तृतीया—वैशाख शुक्ल ३ मंगलवार (१८-४-६१) को अक्षय तृतीयाका महापर्व है। आजका किया स्नान, दान अक्षय पुण्यप्रद कहा गया है। जलपूर्ण घट, व्यंजन एवं संक्तुदानका विशेष महत्व है। इसी तिथिको नर-नारायण, परशुराम तथा हयग्रीव भगवान्‌का अवतार हुआ था। इसीलिये उस दिन जयन्ती मनायी जाती है।

वैशाख शुक्ल तृतीयाके दिन ही त्रेतायुग का प्रारम्भ हुआ था। उसी दिन परशुरामजीका अवतार भी हुआ था। अतः परशुराम जयन्ती सर्वत्र मनायी जाती है। यह व्रत प्रदोष-व्यापी होनेके कारण वैशाख शुक्ल २ सोमवार (१७-४-६१) को ही इस वर्ष पड़ा है। अतः उसी दिन 'परशुराम-जयन्ती' है।

(६) गंगा सप्तमी—वैशाख शुक्ल ७ शनिवार (२२-४-६१) को 'गंगा सप्तमी' व्रत है। इसी दिन जह्नु मुनिने गंगाको पीकर पुनः त्यागा था। निम्ब सप्तमी, कमल सप्तमी तथा शर्करा सप्तमी भी देश भेदसे इसीको कहते हैं।

(७) श्री जानकी नवमी—वैशाख शुक्ल ९ रविवार (२३-४-६१) को जनक-नन्दिनी श्री सीताजीका जन्म हलकी टोड़ी (सीत) से हुआ था। अतः तबसे ही इसका 'सीता नवमी' या 'जानकी नवमी' नाम पड़ा।

(८) मोहिनी एकादशी—वैशाख शुक्ल ११ बुधवार (२६-४-६१) को मोहिनी ११ व्रत है।

(९) नृसिंह जयन्ती—वैशाख शुक्ल १४ शनिवार (२९-४-६१) को यह जयन्ती पड़ी है। इसी दिन भगवान् नृसिंहका अवतार हुआ था। जिन्होंने भक्त प्रह्लादके पिता हिरण्यकश्यपुका वध किया था।

(१०) वैशाखी पूर्णिमा—वैशाख शुक्ल १५ रविवार (३०-४-६१) को यह पवित्र तिथि पड़ी है। इसका व्रत एवं स्नान-दानका महत्व विशेष कहा गया है। आजसे वैशाख स्नान समाप्त होता है।

मैं अपने माता पिता से उऋण नहीं हो सकता, जिन्होंने अबोध तथा अशक्त अवस्था में मुझे अपने प्यार तथा ममता का आश्रय देकर बड़ा किया। उससे भी बड़ा ऋण मुझ पर अपने परिवार का है जिसने कई बार मुझे उबड़ खाबड़ मार्ग में सहारा दिया। उससे भी बड़ा ऋण मुझ पर समाज और देश का है जिसने सामाजिक आचार, विचार तथा देश प्रेम की भावना से मुझे अवगत कराया। उससे भी बड़ा ऋण मुझ पर उन ऋषियों, दार्शनिकों, तथा विद्वानों का है जिन्होंने मुझे विश्व-बन्धुत्व तथा ईश्वर का अनुपम, अद्भुत स्वरूप समझाया। और सबसे बड़ा ऋण मुझ पर मेरी मां का है जिसने मेरे हृदय में बैठकर मेरे कुविचारों, अहंकार व दुर्व्यवहारों को पान करके मुझे अद्भुत ज्ञान, आंतरिक सुख तो दिया ही है, और भले ही मैं मानूं या न मानूं उपरोक्त सभी ऋणों से मुझे बिल्कुल मुक्त भी कर रखा है जिससे मैं स्वच्छन्द विचरण करूँ।

सम्पादकीय

भौतिक ज्ञानकी पराकाष्ठा और तद्जन्य सुख-साधनोंको प्राप्त कर लेनेके बाद भी आज मानव अपनेको अपूर्ण, असुरक्षित और मौतके मुँहमें प्रविष्ट हुआ समझता है। जिन शस्त्रास्त्रों का निर्माण उसने सुख और शक्ति-संचयके लिये किया था, वही आज चिन्ताके विषय बन गये हैं। विश्व अणु युगको पारकर अब स्पुतनिक युगमें प्रवेश कर चुका है। ऐसा प्रतीत होता है कि अणुबमकी विभीषिका से घबड़ा कर मानव अन्य ग्रहों पर छुपनेके लिए आश्रय ढूँढ़ रहा है। पर यहाँ तो वही कहावत है—"बोया पेड़ बबूल के तो आम कहाँ से खाय।"

विज्ञान द्वारा विनाशके बीज बोकर सुख-शान्ति भला कैसे प्राप्त हो सकती है? जिस प्रकार दुःख और यातनासे पीड़ित होनेपर अनायास मनुष्य 'हे राम' कह उठता है उसी प्रकार अब कुछ विवेकशील वैज्ञानिक भविष्य में होनेवाली अपनी असफलता, असहायताको देखकर अब भगवानके चरणोंमें आत्म समर्पण की सोच रहे हैं। उनका रास्ता समाप्त हो चुका है। सामने भयानक खड्ड है, सिरके ऊपर उड़ता हुआ अणुशक्तिसे चालित युद्धक-विमान हिरोशिमाकी यादको ताजी कर रहा है, पीछे शासनसत्ताका भूखा अपना ही भाई दानवके वेषमें चला आ रहा है। अब असहाय मानव क्या करे? सिवा भगवानके अब कोई सहारा नहीं। वही इन विपत्तियोंसे बचाकर सुख-शान्तिका मार्ग दिखला सकता है।

भगवान उसीका भला करते हैं जो उनके आदेशोंको मानकर सद्मार्गको ग्रहण करता है। भगवानका आदेश क्या है? सद्मार्ग क्या है? इसका उत्तर हमें अपने वेद, शास्त्रों एवं धर्म-ग्रन्थोंमें मिलेगा। जिन धर्म-ग्रन्थोंको आजका मानव अपनी ठोकर से दूर करता चला आ रहा है, वे ही इस आपद् कालमें भी उसके चरणोंमें छिन्न-भिन्न अवस्था में पड़े हुए हैं। उन्हें उठाकर देखिये और अमल कीजिये। सामने, पीछे और ऊपरके भयको भूल कर रामको पुकारिये। गजको ग्राहसे छुड़ानेवाले प्रभु अवश्य कृपा करेंगे।

प्रत्येक विषका मारक हुआ करता है। अणु और स्पुतनिक युगकी विभीषिका का भी मारक है। शास्त्र उठाकर देखिये—

मंगलानि गृहे तस्य सर्वसौख्यानि भारत।
अहोरात्रं च येनोक्तं राम इत्यक्षरद्वयम्॥

॥ पद्मपुराण ॥

जो मनुष्य रात्रि-दिन राम इन दो अक्षरों

का अभ्यास करता है। उसके गृहमें सम्पूर्ण मंगल, सुख, शान्ति एवं दैवी शक्तियाँ निवास करती हैं। जिस प्रकार एलेक्ट्रोन-प्रोट्रोनसे मिलकर अणुशक्ति, धन और ऋणसे विद्युत-शक्ति विश्वका संहार कर सकती हैं, उसी प्रकार 'रा' और 'म' इन दो शक्तियोंसे मिलकर बनी हुई जो रामशक्ति है वह समस्त संहारक शस्त्रास्त्रोंसे सुरक्षित रख, मानवको दुःख-द्वन्द से मुक्त कर मोक्ष प्राप्त करा सकती है। अतः सच्चे मनसे रामको पुकारिये, रामकी साधना कीजिये। राम ही रक्षक है, राम ही ब्रह्म है। 'राम' यह ऐसा कवच है जिस पर अणुबम और राकेटका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। 'राम' अस्त्र के आगे मृत्यु भी पराजित होती है। 'राम' अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। रावणकी आसुरी शक्तियोंको नष्ट कर विभीषणकी रक्षा करनेवाले राम ऊपर-नीचे, सामने-पीछे चारों ओरसे आपकी रक्षा करेंगे।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्॥
॥ भगवद्गीता ॥

भगवान कहते हैं जो मनुष्य अनन्य चित्त होकर मेरी उपासना करता है और जो नित्य ही मेरेमें जुड़ा रहता है, उसका योग क्षेम मैं ही करता हूँ।

स्वभावतः ऐसे रामको प्राप्त करनेका उपाय बुद्धिवादी मानव जानना चाहेगा। रामको प्राप्त करनेका फार्मूला (योग) सभी पूछने लगते हैं। इस पर शास्त्र उत्तर देता है—

ज्ञानं विरागो नियमो यमश्च
स्वाध्याय वर्णाश्रम धर्मकर्म।
भक्तिः परेशस्य सतां प्रसंगो
मोक्षस्य मार्ग प्रवदन्ति सन्तः॥ कपिल गीता॥

मोक्ष रूपी फार्मूलेको सिद्ध कर लेने पर ही रामको प्राप्त किया जा सकता है। इसी लिए शास्त्र निर्देश देता है कि परोक्ष ज्ञान, वैराग्य, यम-नियम, वेदका अध्ययन, वर्णाश्रमके धर्म-कर्म, ईश्वरकी भक्ति, महात्माओंका संग इन दश मार्गोंसे जाकर १० दिव्य गुणोंको ग्रहण कर एकाकार करनेसे मोक्षका फार्मूला सिद्ध होता है। बिना इनके रा और म ये दो शक्तिया प्रकट नहीं होती हैं। जब नाम जपसे संकल्प दृढ़ होता है और राममें पूर्ण निष्ठा होती है तब प्रभु कृपाकर सन्त-महात्माओंके द्वारा सद्ज्ञान, सुबुद्धि देकर मनका अन्धकार दूर करते हैं। कहा भी है कि—

उद्यन्तु शतमादित्या उद्यन्तु शतमिन्दवः।
न विना विदुषां वाक्यैः नश्यत्यभ्यन्तरं तमः॥

यदि सौ सूर्य और सौ चन्द्रमा भी उदय हो जायँ तो भी सन्त-महात्माओंके सद्वाक्योंके बिना मनका अन्धकार दूर नहीं होता है।

अब वह युग आ रहा है कि जब मानव भौतिक माया-मोहको छोड़कर अध्यात्म ज्ञान के प्रकाशमें सुख, शान्ति, मोक्ष और परमपद प्राप्त करनेके लिए होड़में लग जायगा। अन्तरिक्ष अभियानकी इस होड़के बाद अब इसीकी बारी है। अब वैज्ञानिक भी स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीरके भेदको समझने लगे हैं। सभी महसूस कर रहे हैं कि स्थूल शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म शरीर द्वारा त्रिलोक गमन, हानि-रहित और वैज्ञानिक है। "यद् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे।" जो शरीरमें है वही ब्रह्माण्डमें है और जो एक परमाणुमें है वही शरीरमें है। इस भौतिक माया के काले परदेके पीछे ही सत्युगका सुनहला प्रकाश है, जहाँ धर्म चारो पैरोंसे विराजमान है। अन्तमें भगवानसे यही प्रार्थना है कि वे हमारी बुद्धिको सद्मार्गमें प्रेरित करें।

परमानन्द-संदेश के

विषय में लोग क्या कहते हैं ?

'परमानन्द-संदेश' नामक नव-संचालित हिन्दी-पत्रिकाके मैंने दो अंक देखे। बड़ी प्रसन्नता हुई। सन्तशिरोमणि बाबा शारदा-रामजी उदासीन मुनि द्वारा संस्थापित और महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज द्वारा संरचित इस पत्रिकाके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। निश्चय ही आध्यात्मिक जगत्में इसका सर्वत्र सम्मान होगा। आशा है अपने परमानन्द-संदेशसे यह इस संत्रस्त जगत्को सदा आश्वस्त करती रहेगी। मैं हृदयसे इसका अभिनन्दन करता हूँ।

डा० मंगलदेव शास्त्री
(विद्यामार्तण्ड)
बनारस २।३।५१

परमानन्द संदेश, वास्तवमें परम-आनन्द प्राप्तिका साधन है। हमारे सामने तीन अंक हैं। उनके सब ही लेख मनुष्य जीवनको सुधारने के लिये रामवाण हैं। अंक तीनका सम्पादकीय लेख 'मनोरञ्जन मनोमञ्जन' बड़ा ही विश्लेषणात्मक और मनोग्राह्य है। बालक, युवक तथा वृद्ध सब ही इस पत्रिकासे आनन्दका लाभ उठा सकते हैं।

जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ
संस्थापक—काशी गुरुकुल वाराणसी

परमानन्द-संदेश, शाश्वत संदेश है। इसमें दानवको मानव तथा मानवको देव बनानेकी अमोघ-शक्ति है। सच पूछा जाय तो चारो पदार्थों की उपलब्धिका एकमात्र स्रोत भी यही है। अस्तु, इस पुनीत-स्रोतको अबाधरूपसे अहर्निशि प्रस्रषित होते रहनेकी इस भौतिक-युगमें तो विशेष आवश्यकता है।

यह "परमानन्द-संदेश" इस अभिष्ट-लक्ष्यकी पूर्तिमें सतत माध्यमका कार्य बड़ी तत्परता एवं जागरूकतासे करता रहे, यही मेरी शुभ-कामना है।

काशिनाथ सिंह एम० ए०
भूतपूर्व-प्रिंसपल
वाराणसी

"परमानन्द-संदेश' पत्रकी भाषा, भाव और टाइप देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। हर वर्गके पाठकोंके लिए यह उपयोगी सिद्ध होगा। अन्य पत्रोंकी भाँति क्लिष्ट और दुरुह न होना इसकी विशेषता है। विकास खण्डों और ग्रामीण क्षेत्रों में इसे अपनाया जा सकता है।

प्रो० देव कुमार एम० ए० पी० एच० डी०
इन्दौर मध्य प्रदेश

आपका "परमानन्द-संदेश" नियमित पढ़ता हूँ। वास्तवमें यह पत्र जैसा नाम वैसा गुण रखता है। मेरे यहाँसे अन्य सज्जन भी लेकर इसे पढ़ते हैं और मुक्त कण्ठसे प्रसंशा करते हैं। बाबाजीके आशीर्वादसे परमानन्द सन्देश जैसे पवित्र पत्र निकालनेका आपका प्रयत्न सराहनीय है। वाराणसीसे पूर्वकालमें मैं समस्त संसारको कर्म, उपासना, ज्ञान और भक्तिकी प्रेरणा प्राप्त होती रही है। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि आपके पत्र द्वारा सबको आचार, विचार, आहार, व्यवहार सुधारने, श्रद्धा-विश्वास-प्रेम बढ़ाने, नीति-धर्म जानने, सत्संग-स्वाध्याय, धार्मिक ग्रन्थों, सन्तवाणी और महान पुरुषोके संदेशको सुनकर अपने आपको जाननेका शुभ अवसर प्राप्त रहेगा। ईश्वर आपको सफलता प्रदान करें यह मेरी दृढ़ अभिलाषा है।

मेजर एस० आर० शर्मा
महात्मा गान्धी रोड, लखनऊ कैन्ट

⊙

"परमानन्द-सन्देश" पत्र नियमित मिल रहा है। इसको कुछ सज्जन मेरे यहाँसे ले जाकर नियमित रूपसे पढ़ते हैं। वे उच्चकोटि के विद्वान भी हैं। उन लोगोंने इस पत्रकी बड़ी ही प्रशंसाकी है। मैं भी इसे आद्योपान्त पढ़ जाता हूँ। कुछ लेख तो कई बार पढ़ता हूं। सच-मुच 'परमानन्द सन्देश' उच्चकोटिका है और अपने ढंगका अकेला है। विज्ञापनको स्थान न देना उसकी महत्ताको और भी बढ़ा देता है।

रामनगीना सिंह एम० ए०
डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल, आजमगढ़

'परमानन्द-सन्देश' मिला आपका प्रयत्न स्तुत्य है। बहुत सुन्दर। अब लोगोंमें धर्म चर्चा बढ़ने लगी है इसलिए इसकी अवश्य वृद्धि होगी।

श्री चन्द्रसेन मंत्री ज्ञानधाम प्रतिष्ठान
दिल्ली शाहदरा

●

आपका 'परमानन्द-सन्देश' मिला। जिसमें श्री अरविन्दजीका "भारत जाग उठा है" लेख बारम्बार पढ़ा। और सब लेख भी पढ़ता हूँ। प्रत्येक लेख बहुत ही हृदयस्पर्शी हैं। भगवान इस पत्रकी सर्वाङ्गीण उन्नति करें।

डा० बलराम मेहता पहाड़पुर रोड, कलकत्ता

●

"परमानन्द-सन्देश" पत्र पढ़कर अपार गौरव और हर्ष हुआ। आजके युगमें ऐसे पवित्र पत्रकी आवश्यकता थी। बाबा शारदारामजीका प्रवचन और वाणी अत्यन्त मनोग्राह्य और कल्याण कारी है। नियमित परमानन्द संदेश भेजते रहें।

दिनेश प्रसाद शाह
आयोध्यागंज बाजार, पुर्णिया विहार

●

परमानन्द संदेश पढ़कर हम सभी आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। ऐसे शुद्ध धार्मिक शिक्षाप्रद एवं सदाचार सम्बन्धी पत्र निकालकर देश और जनताकी जो सेवा आप कर रहे हैं उसके लिये जितना भी धन्यवाद दूँ कम है। ईश्वर व ईश्वर भक्तोंका सदा सहयोग आपको मिलेगा ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

शिवव्रत सिंह मौर्य्य
चौक फैजाबाद

समाचार

बाबा शारदारामजी महाराजका आगमन !

पिछले अंक में प्रकाशित किया गया था कि सद्गुरु बाबा शारदारामजी महाराज मार्च में काशी पधार रहे हैं। पर कुछ कारणवश सहसा कार्यक्रम में परिवर्तन हो गया। अब महाराजजी अप्रैलके आखिरी सप्ताहमें उदासीन पुरी कप्तानगंज आजमगढ़में पधार रहे हैं। ज्ञातव्य है कि महाराजजीके उपस्थितिमें ही उदासीन पुरीके नवनिर्मित मन्दिरमें मूर्ति-स्थापना समारोह प्रभु कृपासे सम्पन्न होगा। ज्ञात हुआ है कि महाराजजी दिल्ली, लखनऊ और अयोध्या होते हुए कप्तानगंज पहुँचेंगे। काशी आनेके विषयमें अभी कोई तिथि निश्चित नहीं है। कार्यक्रमकी पूरी जानकारी पत्र-व्यवहार द्वारा परमानन्द संदेशके कार्यालयसे प्राप्त हो सकती है।

●

मूर्तिस्थापना समारोह

ज्ञात हुआ है कि वैशाख पूर्णिमा दिनांक ३० अप्रैल १९६१ को उदासीन पुरी कप्तान गंजमें मूर्तिस्थापना समारोह मनाया जायगा। इस अवसर पर बाबाजीके प्रिय शिष्य एवं अनन्य भक्त श्री अजित मेहता बी० ई० सिविल पूना निवासी (जन्म स्थान गुजरात) की ओर से एक वृहत् भंडारे का आयोजन किया जा रहा है। ज्ञातव्य है कि उक्त मन्दिर और मूर्ति का निर्माण श्री मेहताजीने श्रद्धा-भक्ति पूर्वक बड़े उत्साह से करवाया है। भगवानकी कृपासे उनकी मनोकामना पूर्ण हो और गुरु महाराजके चरणोंमें भक्ति-कीर्ति अटल रहे।

लोक सुखी-परलोक सुहेले।
नानक हर प्रभु आपे मेले ॥
चार पदारथ जे कोई मागो।
साध जनाकी सेवा लागो ॥

मूर्ति-स्थापनाके शुभ अवसर पर बाबा शारदारामजी रचित श्री निर्गुण महारामायण और श्री भागवत किरणका सम्मिलित अखण्ड पाठ होगा। इसी शुभ अवसर पर बाबाजीके बड़े भाई श्री अलगूराम चौधरीजीकी स्मृतिमें उनकी शंखमरमरकी मूर्ति स्थापित की जायगी। कार्यक्रमका पूरा विवरण अभी प्राप्त नहीं हो सका है।

जो कुछ होय सोई सुख माने।
करन करावन आप प्रभु जाने ॥

भक्तवत्सल

प्रति वर्षकी भाँति दिनांक २५-२-६१ शनिवारको परमपूज्य सद्गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन मुनिने अपने परम भक्त श्री हजारी लाल लालचन्द सलुजेके घरपर पधार कर कृतार्थ किया। रामटेकड़ीसे बाजे-गाजेके साथ

बृहत् शोभा-यात्राके रूपमें बाबाजीकी सवारी गुरुदेव रेस्टोरेन्ट ३०२ घोरपड़े पेठ लाई गई। सजे हुए मण्डपमें उच्चासन पर बाबाजी विराज रहे थे। चरणोंमें कीर्तन, भजन एवं कृष्णलीला का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। आरती, पूजन और भण्डाराके बाद यह पवित्र समारोह समाप्त हुआ।

परमानन्द संदेशके आजीवन ग्राहक

श्री रतिलाल भानजी मिथानी, 'शंकर-निवास' माटुंगा बम्बई तथा श्री शान्तिलाल छगन लालजी, शेखमेमोनस्ट्रीन बम्बई, उक्त दोनों कृपालु सज्जनोंने परमानन्द संदेशका आजीवन ग्राहक बनकर हमारा सहयोग किया है। इसके लिए हम आपका कोटिशः धन्यवाद करते हैं। गुरु परमात्मा आपका मंगल करें।

स्थायी ग्राहक

श्री सी० एस० किशन सिंह, ओल्ड कसाई रोड, बंगलोर सिटी, तथा श्री शान्तिलाल दया भाई शाह, दवायर लेन पूना, परमानन्द संदेशके स्थायी ग्राहक बने हैं। इसके लिये हम आपका धन्यवाद करते हैं।

ग्राहकोंसे निवेदन

जिन ग्राहकोंको परमानन्द संदेश न प्राप्त हो वे कृपया कार्यालयको सूचित करनेका कष्ट करें। साथ ही अपना पूरा पता साफ और सही लिखकर भेजनेकी कृपा करें।

—:o:—

संसारसे आप जो कुछ सीखते हैं, अपने सम्पूर्ण जीवनमें उसमेंसे कुछ या उतना ही संसारको आप लौटा देते हैं।

सीखनेकी अवस्थामें आप अकेले होते हैं और सिखाने वाला होता है संसार। इसलिए आप जितना चाहे जो चाहें दिल खोलकर सीखिए इससे आपके ज्ञानकी वृद्धि होगी।

लौटानेकी अवस्थामें भी आप अकेले होते हैं मगर आपके कार्यों और विचारोंको वापस लेता है सारा संसार। इसमें आपको काफी सावधान होकर उन्हीं बातोंको लौटना चाहिए, वे ही कार्य करने चाहिए, जिन्हें अन्तरात्मा अच्छा कहे।

आपके प्रत्येक शब्द, प्रत्येक कार्यसे संसार प्रभावित हो उठेगा, यही जीवनकी सफलता है।

परमानन्द संदेशके नियम

उद्देश्य

परमानन्द संदेश विशुद्ध आध्यात्मिक-धार्मिक मासिक पत्र है। परमात्माके नामका गुणगान करते हुए धर्म, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य एवं सदाचार समन्वित साहित्य द्वारा जनताका मनोमञ्जन तथा सन्त महात्माओंके परमानन्ददायक संदेशको घर-घर पहुँचाना इसका उद्देश्य है।

नियम

१—परमानन्द संदेशका नया वर्ष कातिक माससे प्रारम्भ होकर आश्विन मासमें समाप्त होता है। वर्षके किसी भी मासमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, पर ग्राहकोंको चालू वर्षके सम्पूर्ण अंक लेने होते हैं।

२—परमानन्द संदेशकी प्रत्येक वर्षगाँठपर एक विशेषांक ग्राहकोंको उसी मूल्यमें भेंट दिया जायगा।

३—परमानन्द संदेशके ग्राहक तीन प्रकारके बनाये जाते हैं। १—साधारण ग्राहक २—स्थायी ग्राहक ३—आजीवन ग्राहक।

साधारण ग्राहकोंको ५) वार्षिक शुल्क रहेगा।

स्थायी ग्राहकोंको २५) एक साथ शुल्क देनेपर ६ वर्षों तक 'परमानन्द संदेश' उनकी सेवामें भेजा जायगा।

जो सज्जन १५१) रुपये एक साथ शुल्क देंगे उन्हें आजीवन ग्राहक बना लिया जाता है। उनका नाम परिचय वर्षमें एक बार सादर प्रकाशित किया जाता है।

४—प्रत्येक ग्राहकोंको 'परमानन्द संदेश' बड़ी सावधानीके साथ भेजा है। यदि किसी कारणवश पत्र समयपर न मिले तो अपने पोस्ट आफिससे लिखा-पढ़ी कीजिये। उसके बाद यहाँ कार्यालयको १५ दिनके अन्दर सूचित करें।

५—अपना नाम व पता साफ-साफ लिखें। पता बदलना हो तो १५ दिन पहले सूचना देनी चाहिये।

६—वार्षिक शुल्क सदा मनीआर्डरसे भेजिए। वी० पी० मगानेसे खर्च ज्यादा पड़ता है।

७—मनीआर्डरके कूपनपर रुपया भेजनेका मतलब और अपना पूरा पता साफ-साफ अवश्य लिखिए।

८—'परमानन्द-संदेश' सम्बन्धी प्रत्येक पत्र व्यवहार प्रधान सम्पादकके नाम शारदा प्रतिष्ठानके पते पर करना चाहिये।

लेखकोंसे

९—लेख सदा स्वच्छ उपयोगी एवं विवाद रहित होने चाहिये।

१०—उद्देश्यके विपरीत कोई लेख स्वीकार नहीं किया जायगा।

११—लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने न छापने का पूरा अधिकार सम्पादकको है।

१२—लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं है।

१३—अमुद्रित लेख लौटाये नहीं जाते हैं। यदि आप वापस चाहें तो डाक टिकट साथमें अवश्य भेजिये।

१४—दो या तीन पेजसे अधिक लम्बे लेख न भेजें।

बाहरी विज्ञापन स्वीकार करनेका हमारा नियम नहीं है। अतः इससे होनेवाली क्षतिकी पूर्ति आपके सहयोग द्वारा ही सम्भव है।

सद्‌गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन मुनि के जीवनकी
चित्रमय झाँकी, चित्र नं० ४
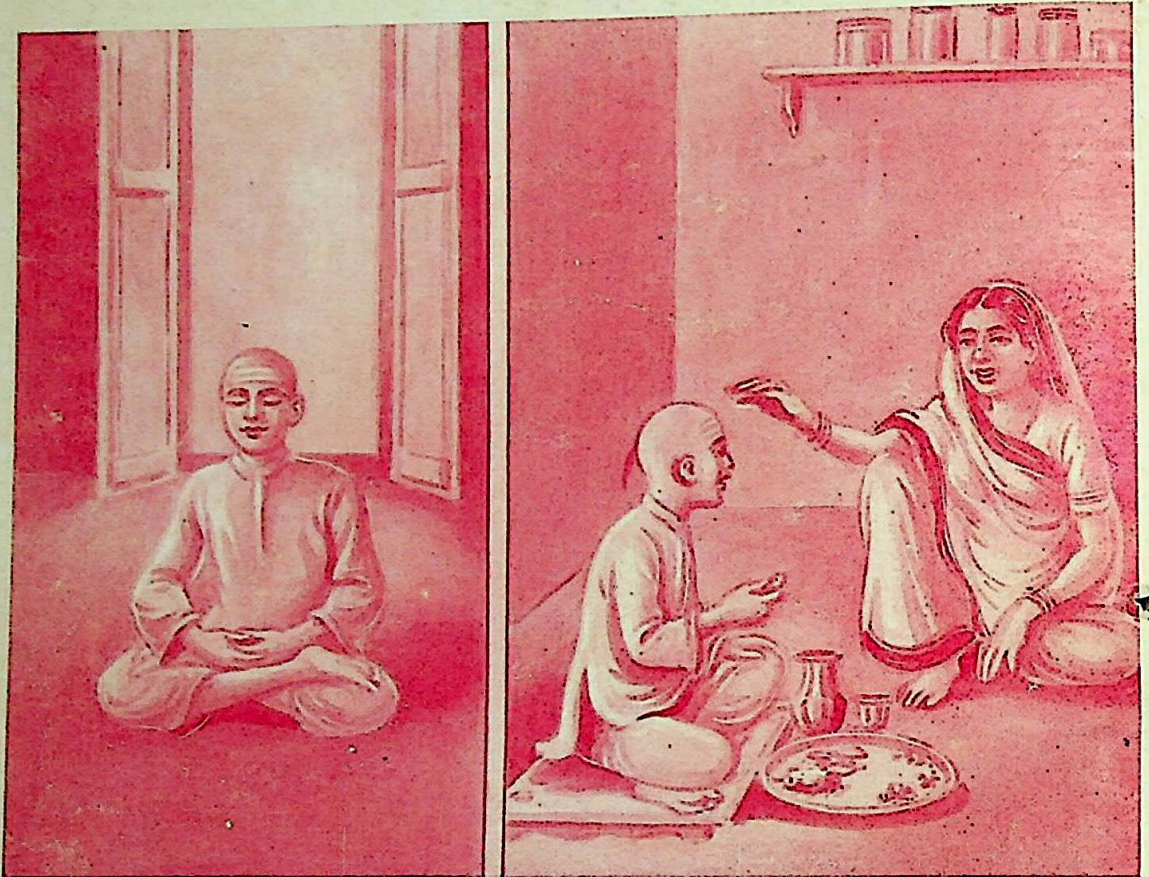
लगी लगन प्रभु चरण में, हुए जलेश विरक्त । माया का बन्धन बढ़ा, मात-पिता अनुरक्त ॥
पन्द्रह की अल्पायु में, बेड़ी बना विवाह । पिता गये गोलोक में, बीतत ही षट माह ॥
सुख-दुख के इस द्वन्द से, गई आत्मा जाग । सद्‌गुरु पाने के लिये, जागा मन अनुराग ॥
भक्तवत्सल भगवान ने, किया अनुग्रह दान । प्रसवकाल में शिशु सहित, स्त्री ने त्यागा प्राण ॥
बन्धन मुक्त जलेश अब, करते जप-तप ध्यान । श्री गोविन्द जमात सँग, सहसा चले अजान ॥
सन्त दरस के हेतु से, चचा भ्रात अरु मात । पहुँचे नई बजार में, जहाँ गोविन्द जमात ॥
साधु-सन्त के बीच में, देखा पुत्र जलेश । श.चि व्याकुल चाचा हृदय, उमड़ा अधिक कलेश ॥
क्रुद्ध चचा जी बल सहित, लाये घर पर साथ । बन्द कोठरी में किया, ताला दे निज हाथ ॥
तीन दिवस भूखे रहे, मिला न अन्न अहार । माँ की ममता वह चली, हठ से खुला किवार ॥
देख चकित सब हो गये, बालक सिद्ध महान । भूख प्यास को वश किये, करता है शिव ध्यान ॥
माँ ने प्यार दुलार से, भोजन तुरत जिँवाय । वरद हस्त कहने लगीं, शंकर होंय सहाय ॥
हम हारे तुम जीत गये, होना चाहो साध । हरि इच्छा के सामने, अब नहिं कोई बाध ॥